

ISSN 0975-850X

अनुसंधान शोध त्रैमासिक

वर्ष : 4, जुलाई-सितम्बर 2013

सम्पादक

डॉ. शगुफ़ता नियाज़

असि. प्रोफेसर हिन्दी,

वीमेन्स कॉलेज,

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

सलाहकार सम्पादक

डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद

हिन्दी विभाग,

हलीम मुस्लिम पी. जी. कॉलेज,

चमनगंज, कानपुर

09044918670

परामर्श मण्डल

प्रो. रामकली सराफ (बी. एच. यू.)

मूलचन्द सोनकर (वाराणसी),

डॉ. मेराज अहमद (अलीगढ़)

सहयोग राशि :

एक प्रति : 40/- रु., वार्षिक शुल्क संस्थाओं के लिए : 220/- रु., द्विवार्षिक शुल्क संस्थाओं के लिए : 380/- रु., आजीवन

सदस्य : 1500/- रु., संस्थाओं के लिए आजीवन : 2,000/-

सह-सम्पादक :

विनीत कुमार (अलीगढ़),
सलीम मुजावर, फ़ोन-9480781006

कानूनी सलाहकार :

एम. एच. खान, एडवोकेट(हाईकोर्ट, इलाहाबाद)
एम. ए. खान, एडवोकेट(हाईकोर्ट, इलाहाबाद)
डॉ. संजय सिंह, एडवोकेट(अलीगढ़)

सम्पादन सहयोग :

भानु चौहान, यूसुफ अली (अलीगढ़)

सम्पादन/संचालन :

अनियतकालीन, अवैतनिक और अव्यावसायिक।
रचनाकार की रचनाएँ उसके अपने विचार हैं।
रचनाओं पर कोई आर्थिक मानदेय नहीं दिया जाएगा।
लेखकों, सदस्यों एवं मित्रों के आर्थिक सहयोग से पत्रिका प्रकाशित होती है।
उनसे सम्पादक-प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
किसी भी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र अलीगढ़ होगा।

शुल्क भेजने का पता :

मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट : डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ के नाम
205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड, सिविल लाइन, अलीगढ़-202002

डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ की ओर से डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ द्वारा प्रकाशित, डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ द्वारा मुद्रित तथा रुचिका प्रिंटर्स दिल्ली में मुद्रित एवं **बी-4, लिबर्टी होम्स, अब्दुल्लाह कॉलेज रोड, अलीगढ़-202002** से प्रकाशित।

सम्पादकीय

अनुक्रम

डॉ. (श्रीमती) के. के. रवि

हिन्दी अस्मितामूलक पत्रकारिता का संकट एवं चुनौतियाँ/7

कनुभाई करशनभाई भवा

बच्चन कृत मधुशाला का अनुभूति पक्ष : एक अध्ययन/19

डॉ. रीतू बहनोट

महिला लेखन : विविध पहलू/23

निधि नागर/डॉ. कमलेश कुमारी रवि

छायावादोत्तर हिन्दी कविता और जीवन मूल्य/26

डॉ. पवन कुमार

कुँवर नारायण के काव्य में राजनीतिक चेतना/31

प्रा. भरतभाई बावलिया

तमस : देश विभाजन की एक हृदयद्रावक त्रासदी/37

प्रा. डॉ. ज्योति मुंगल

20वीं सदी के अंतिम दशक के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों के विविध आयाम/40

रमेश मनोहर लमाणी

आधुनिक हिन्दी आत्मकथाओं में दलित संवेदना/43

श्री टी. टी. लमाणी

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में सांस्कृतिक विघटन/48

डॉ. सैय्यद एकबाल मजाज़

हिन्दी नवजागरण की अवधारणा/52

साम्प्रदायिकता की समस्या: मैं हिंदू हूँ

डॉ. जाहिदा जबीन

असगर वजाहत आज के सशक्त कथाकार तथा स्वतंत्र पत्रकार हैं। एक पत्रकार की पैनी दृष्टि के अतिरिक्त आप समाज सेवक भी हैं और कई समाज सेवी संस्थाओं से जुड़े हैं। अतः यह दोनों विशेषताएं सहायक बन आपको समाज की विसंगतियों को परखकर शब्दों में पिरोने में सफलता प्रदान करती हैं।

‘मैं हिंदू हूँ’ (2006) आपका चौथा कहानी-संग्रह है, जिसमें अठारह कहानियाँ संग्रहित हैं। “विषय की विविधता के बावजूद उनकी कहानियों में साम्प्रदायिकता की समस्या तथा सामाजिक अवमूल्यन का अपना अलग महत्त्व है।” संग्रह की हर कहानी इस तथ्य का प्रमाण है कि लेखक को समाज की विसंगतियाँ, अव्यवस्था कचोटती हैं, विशेषकर स्वतंत्र भारत में चल रही साम्प्रदायिकता, वर्ग-संघर्ष, फसाद, दंगे, मार-काट पर लेखक ने करारे व्यंग्य किए हैं, मानो वह अपने मन की भड़ास निकाल रहे हैं।

कहानी-संग्रह के शीर्षक पर आधारित ‘मैं हिंदू हूँ’ भारत के साम्प्रदायिक दंगों, फसादों, अकारण मार-काट पर लिखी गई हृदयभेदक कथा है। कथा का मुख्य पात्र सैफू अपने चाचा के पास रहने वाला मन्दबुद्धि अनाथ बालक है। शहर में चल रहे फसाद के कारण लगे कर्फ्यू का अंत होने की कोई संभावना नज़र नहीं आ रही थी तो मुहल्ले के कुछ युवक रात में घरों की पहरेदारी करने के साथ-साथ समय काटने के लिए सैफू को मन गढ़त भयानक कथाएँ सुनाया करते थे कि हिंदू के हाथ यदि कोई मुसलमान लग जाए तो उसे यातनाएं दी जाती हैं। मासूम सैफू के मन में डर ने ऐसा घर किया कि नींद में भी चीखने लगता था, उस बालक के मन में यह बात बिठा दी गई थी कि भारत में मुसलमान सुरक्षित नहीं हैं और भारत में जीना है तो हिंदू बनकर ही जीना होगा, एक दिन पी.ए.सी द्वारा कर्फ्यू में निकलने पर पिटने पर वह बेहोश होने तक चीख-चीख कर यही कहता रहा कि “मुझे तुम लोगों ने क्यों मारा.....मैं हिंदू हूँ.....मैं हिंदू हूँ.....”²

लेखक के स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि वास्तव में मानव मात्र धर्म का दुरुपयोग कर धर्म के नाम पर दंगा करता है। या तो मानव बिना लड़े रह नहीं सकता या तो राजनैतिक दाव-पेचों में उलझ कर कुछ गुण्डे पूरे समाज की नाक में दम करते हैं। ‘...दो हज़ार आदमी लाखों लोगों की ज़िंदगी को जहन्नुम बनाएं हुए हैं...दस हज़ार अंग्रेज करोड़ हिंदुस्तानियों पर हुकूमत किया करते थे और सारा निज़ाम उनके तहत चलता रहता था।...’³ यदि दो धर्मों के लोगों के पास लड़ने का कारण धर्म है तो फिर समान धर्मी लोगों में दंगों का क्या कारण हो सकता है? ‘ये तो सोचने की बात है...पाकिस्तान में शिआ-सुन्नी एक-दूसरे की जान के दुश्मन हैं...तो क्या चार आदमी या कहीं इंसान...लड़ते ही रहना चाहता है...’⁴

साम्प्रदायिक दंगों के वातावरण के एक दृश्य पर लेखक के व्यंग्य दृष्टव्य हैं-‘तब दंगे ऐसे नहीं हुआ करते थे जैसे आजकल होते हैं। दंगों के पीछे छिपे दर्शन, रणनीति, कार्य पद्धति और गति में बहुत परिवर्तन आया है। आज से पच्चीस-तीस साल पहले न तो लोगों को ज़िंदा जलाया जाता था और न पूरी-पूरी बस्तियाँ वीरान की जाती थी। उस जमाने में प्रधानमंत्रियों, गृहमंत्रियों और मुख्यमंत्रियों का आशीर्वाद भी दंगाइयों को नहीं मिलता था.....’⁵

मानव इतना संवेदनशील कैसे हो सकता है कि साम्प्रदायिक दंगा, फसाद उसके लिए इतनी आम बात हो गई है कि उसकी दिनचर्या पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता। मानो फसाद न होकर मौसम का बदलना... ‘बदलते हुए मौसमों की तरह राजनीति में साम्प्रदायिक दंगों का भी मौसम आता है।...शहर यह मानने लगा है कि साम्प्रदायिक दंगा भी मौसमों की तरह निश्चित रूप से आता है। बात इतनी सहज-साधारण बना दी गई है कि साम्प्रदायिक दंगों की खबरें लोग इस तरह सुनते हैं जैसे ‘गर्मी बहुत बढ़ गई है’ या ‘अब की पानी बहुत बरसा’ जैसी खबरें सुनी जाती हैं....इस थोड़ी-सी असुविधा पर मन ही मन कभी-कभी खीज जाते हैं,....उद्योग, व्यापार, शिक्षण, सरकारी

कामकाज सब सामान्य ढंग से चलता रहता है।...”⁶

मीडिया में भी दंगा-फसाद की खबर एक सामान्य आम खबर-सी है, जिसमें दुख-कष्ट व्यक्त करने की कोई संभावना या आवश्यकता नहीं होती। बस समाचार को सामाचार की तरह प्रस्तुत करना है। ‘अखबार वाले भी दंगे की खबरों में कोई नया या चटपटापन नहीं पाते और प्रायः हाशिए पर ही छाप देते हैं। हाँ, मरने वालों की संख्या अगर बढ़ जाती है तो मोटे टाइप में खबर छपी है नहीं तो सामान्य।’⁷

मार-काट के बारे में मीडिया की सीधी-स्पष्ट भाषा दृष्टव्य है ‘पुरानी दिल्ली में दंगा हो गया। तीन मारे गए, बीस घायल, दस की हालत गंभीर, पचास लाख की सम्पत्ति नष्ट हो गई।’⁸

बड़े-बड़े नेता, संघटनकर्ता अपनी दाल गलाने के लिए ‘साम्प्रदायिकता विरोधी कमेटी’ बनाकर फसादों के विरोध में सम्मेलन कर मानो अपना कर्तव्य निभा लेते हैं और बड़े-बड़े पदों से अवकाश प्राप्त नागरिक इन संघटनों के सदस्य बनकर गर्व का अनुभव करते हैं। ‘साम्प्रदायिक सद्भाव बनाने के लिए नामी हिंदू, मुस्लमान, सिख, नागरिकों का होना भी ज़रूरी है।’⁹ ‘साम्प्रदायिकता विरोधी सम्मेलन’ करने की आवश्यकता तो आए दिन पड़ती है, इस कारण बैनर अगले इस्तेमाल के लिए सम्भालकर रखे जाते हैं। “मुझे याद आया कि वही बैनर है जो चार साल पहले हुए भयानक दंगों के बाद किए गए सम्मेलन में लगाया गया था। बैनर पर तारीख की जगह पर सफेद कागज़ चिपकाकर नई तारीख लिख दी गई थी।”¹⁰

भारतीय नागरिक चाहे किसी भी धर्म का क्यों न हो, आंतकवाद से पीड़ित है। हर धर्म के व्यक्ति को लगता है कि उस पर अत्याचार हो रहा है। आम भारतीय मुसलमान व्यक्ति कभी-कभी स्वयं को भारत में असुरक्षित अनुभव करता है, जैसा कि मुख्तार नामक पात्र कहता है-“और यहाँ क्या है मुसलमानों के लिए? इलाहाबाद, अलीगढ़, मेरठ, मुरादाबाद, दिल्ली, भिवंडी-कितने नाम गिनाऊं...मुस्लमानों की जान इस तरह ली जाती है जैसे कीड़े-मकोड़े हो।”¹¹

एक दिन फसाद में मुख्तार जब जल्दी घर पहुंचने के लिए तेज़ी से भाग रहा था तो उसके सिर पर कहीं से एसिड का बल्ब आ गिरा, आठ दिन कफ़रू चलने के कारण इलाज नहीं हो पाया, तो उसके सिर पर गहरा जख्म और गहरा होता गया और सूखने का नाम ही नहीं लेता था। दंगों के विरोध में चल रहे सम्मेलन, संस्थाएँ उस अशिक्षित कहलाने वाले पीड़ित नागरिक की समझ से बाहर हैं। उसे भाषण नहीं परिणाम चाहिए।

आम भारतीय केवल शांतिपूर्ण भारत की कामना मात्र कर सकता है ‘देखो ज़रा सिर्फ तसव्वुर करो कि हिंदुस्तान में हिंदुओं, मुसलमानों के बीच कोई झगड़ा नहीं है। कोई बाबरी मस्जिद नहीं है। कोई राम-जन्मभूमि नहीं है। सब प्यार से रहते हैं।.....’¹²

‘मुश्किल काम’ एक हृदयभेदक घटना पर आधारित कथा है जहाँ दो दलों के गुण्डे दंगा और फिर चुनाव होने एवं सरकार बन जाने के उपरान्त एक मदिरालय में सारी शत्रुता भूलकर खाना-पीना और शराब में मस्त अपनी-अपनी बहादुरी का ब्यौरा दे रहे थे। एक दल ने 26 और दूसरे दल ने 22 लोगों को मौत के घाट उतारने का दावा किया। सबने आग, बलात्कार, जवानों, स्त्रियों, बच्चों, बूढ़ों का वध करने की सूची दी। बातचीत के दौरान हर घटना पर ठहाके लगाते हुए यह बात तय हुई कि केवल एक काम है जिसे करने में कठिनाई होती है। वह है बच्चों को मार डालना, लेकिन क्यों? क्योंकि ‘बच्चों को मारते समय...अपने बच्चे याद आ जाते हैं।’¹³

‘गुरु-चेला संवाद’ के सात अंगों में लेखक ने विलक्षण, सांकेतिक प्रश्नोत्तर संवाद-योजना में कई गंभीर प्रश्नों पर प्रकाश डाला है, जैसे कि भारत में मुसलमानों से घृणा का कारण यदि यह है कि उनके कारण देश का बँटवारा हुआ तो फिर ‘देशवासियों को बांटने वालों का क्या करना चाहिए?’¹⁴

भारत जैसे सेकुलर देश में मात्र मुसलमानों को ही विदेशी क्यों समझा जाता है? यदि यह केवल हिंदुओं का देश है ‘तब तो सिखों, ईसाईयों, जैनियों, बौद्धों, पारसियों, यहूदियों को इस देश से निकाल देना चाहिए।’¹⁵ साम्प्रदायिक दंगे और फिर अनगिनत मौतें आम बात क्यों हो गई है? दंगा करवाने और कत्ल करवाने का आरोप जनता पर जाता है। जनता का कोई चेहरा नहीं है। इस कारण दण्ड भी किसी को नहीं मिलता। दंगा रोकने का दायित्व भी जनता पर ही है। ‘मतलब किसी पर नहीं।’¹⁶ और नेतागण अपनी चैन की सांस ले रहे हैं। उनके लिए तो ‘...यह कोई मामला ही नहीं है।’¹⁷

‘शीशों का मसीहा कोई नहीं’ भी हिंदू-मुस्लिम फसाद पर आधारित कथा है। कैसे लोग अपने ही देश में एक-दूसरों की सम्पत्ति को तोड़-फोड़ कर एक-दूसरे की भावनाओं को ठेस पहुंचाते हैं, इस कथा में देखा जा सकता है। मामू नाई, जिसे सब हिंदू-मुसलमान बिना उसका नाम जाने उसे मामू के नाम से जानते हैं, फसाद होते ही पहले उसी की दुकान जलाते हैं। उसकी दुकान में लगे बड़े आईने को चकनाचूर करते हैं, जो उसने भारत बँटवारे के उपरान्त पलायन करने वाले एक सेठ से पैसा कर्ज पर उठाकर बड़ी मुश्किल से खरीदा था और उसे वह आईना बड़ा प्रिय था। ‘शीशे के छोटे-छोटे टुकड़ों में सैंकड़ों

मामू मेरी तरफ देख रहे थे। न कोई शिकवा, न शिकायत, न आहत होने का भाव, न प्रतिशोध....उनकी आंखों में अगर कुछ न था तो सिर्फ यह कि कुछ न था।”¹⁸

‘शाह आलम कैम्प की राहें’ शीर्षक के अंतर्गत लेखक ने छोटी-छोटी 10 घटनाओं का उल्लेख किया है। जब गुजरात दंगा में मृत लोगों की आत्माएं ‘शाह आलम कैम्प’ में शरणार्थी रह रहे अपने सम्बन्धियों से मिलने आती हैं तो कहीं बेटा अपनी माँ से मिलना चाहता है, चाहे मर कर ही सही। भाई को एक लड़की का भाई होना चिंताजनक लगता है। माँ की रूह को बच्चा न मिला तो वह दंगाइयों से पूछती है, जो हंसकर कहते हैं-“...दस-दस बीस-बीस लोगों को एक साथ जलाया जाता है तो एक बच्चे का हिसाब कौन रखता है? ...जिसे हम त्रिशूल पर टांग आए है।”¹⁹ एक शिशु की आत्मा जुगनू की तरह चमक रहा है जो स्वयं को दंगाइयों की बहादुरी का प्रमाण बताता है। क्योंकि ‘...मेरी माँ का पेट फाड़ कर मुझे निकाला था और मेरे दो टुकड़े कर दिए थे।’²⁰ जो सच में बड़े साहस का काम है। यह सब देख शैतान भी शरमा जाता है और कहता है “...ये जो कुछ हुआ है....इसमे मेरा कोई हाथ नहीं है...अल्लाह कसम मेरा हाथ नहीं है।”²¹ एक आशा की किरन भी है। शायद अभी भी लोगों में इंसानियत है, जैसा कि गांधी जी की आत्मा कहती है, “...न उनके गोली मार कर मारने से मैं मरा था और न उनके ज़िंदा जला देने से मरूंगा।”²²

‘मेरे मौला’ कहानी में भी भारतीय मुसलमान के मन में फसाद के डर और बाबरी मस्जिद घटना का उल्लेख मिलता है। एक आम व्यक्ति जो दिन भर परिश्रम कर रात कमाई हुई रोटी खाता है, यही सोचता है, “...ये लोग...मुसलमानों को नेस्तोनाबूद कर देना चाहते हैं....पर सोचो, मियाँ, मुसलमानों ने इनका बिगाड़ा क्या है...अरे, हम दिन-रात खटते हैं, तो ऊपर वाला गोश्त-रोटी का इंतजाम कर देता है...फिर ये लोग क्यों ऐसा करते हैं?”²³

लेखक ने मुस्लिम धर्म के लोगों को धर्माडम्बर करते और धर्म की आड़ में हर बुरा काम करते भी दिखाया है। फिर वह चाहे पत्नी पर अत्याचार करना हो, स्वयं से तिगुनी कम लड़की से विवाह कर उसे दूसरी-तीसरी पत्नी बनाना हो, पत्नी को कैद रखना हो या कोई धर्माडम्बर हो। लेखक ने हक्कानी साहब के माध्यम से उन सभी मुसलमानों के दिखावे पर व्यंग्य किए हैं। “वो समझता है इस्लाम की आड़ में जो चाहे कर सकता है, पहले तो उसका यही भ्रम तोड़ना है।”²⁴

मुसलमान धर्म में बकराईद पर पशु बलि का नियम है, जो कई शाकाहारी तथा पशु प्रेमी लोगों के लिए बहुत

कष्टदायक होता है। ‘तेरह सौ साल का बेबी कैमिल’ के डॉ. ओमप्रकाश शर्मा और उनका परिवार भी हक्कानी साहब के ईद पर ऊँट की बलि के कारण फैली दुर्गन्ध से परेशान है। उनकी बेटी बेबी लिली छोटे से ऊँट को देखकर मोहित हो गई। वह उसे पड़ोस में जाकर देखने गई, किंतु वहाँ उसकी कुर्बानी होते और उसका खून बहते देख डर के मारे बेहोश होती है और होश में आते ही बेबी कैमिल से मिलने की व्यर्थ ज़िद करती है।

लेखक ने संग्रह में अन्य सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है। ‘श्री टी. पी. देव की कहानियाँ, शीर्षक पर आधारित दस लघु कहानियों में वर्तमान जीवन व्यवस्था और मशीन बन रहे मानव पर करारे व्यंग्य किए गए हैं। जैसे टी. पी. की लत, रिश्तों और पड़ोसियों के प्रति उदासीनता, एक-दूसरे में बढ़ता अविश्वास, अपने अंतर्मन का न मान कर दिमाग से काम लेना आदि। आज के मशीनी मानव के पास आराम का समय नहीं। आराम तो मृत्यु के उपरांत ही प्राप्त होता है।

आर्थिक अभाव, निर्धनता और बेचारगी से पीड़ित एक चुगल के चार बच्चों समेत आत्महत्या करने का हृदयभेदक चित्रण ‘जिम्मेवारी’ कहानी में देखा जा सकता है। ‘नाच’ कहानी में बंदर, बंदरिया और उनका मालिक तीनों भूखे पेट इस सोच में डूबे हैं कि कमाई कैसे की जाए। आज के युग में तो कोई बंदर का नाच देखता नहीं। अंत में सुझाव यह निकला कि बंदर नहीं, आदमी गले में रस्सी डालकर नाचगा और बंदर मालिक बन नचाएगा। कुछ ही पल के बाद यह खेल देखने के लिए भीड़ जमा हो गई। खूब पैसे मिले और तीनों ने भर पेट खाना खाया। अतः दुनिया वाले हर उलटी चीज़ को पसंद करते हैं। ‘ये दुनिया वाले जालिम हैं। नाचने वाले का नाच देखकर उन्हें मजा नहीं आता....हॉ जो नहीं नाचता....उसे नाचता देख लोगों को मज़ा आता है।’²⁵

‘होज़ वाज़ पापा’ अर्थात् कैसे हो पापा नामक कहानी में लेखक ने यूरोप के एक अस्पताल में मरीज़ के रूप में व्यतीत किए कुछ दिनों के अनुभव को व्यक्त किया है। अस्पताल के वातावरण पर प्रकाश डालते हुए और भारतीय एवं विदेशी महिलाओं में नैतिकता को मापदण्डों में अंतर स्पष्ट करते हुए भी कहानी में मुख्य समस्या आर्थिक तनाव ही मिलती है।

पापा कहलाने वाले वृद्ध भी अस्पताल में भर्ती है। ‘अस्पताल में रोटी और दीगर चीज़ें खूब मिलती थी। उन्हीं में पापा कुछ बचाकर रख लेते थे।’²⁶ पापा की बेटी सब की नज़रे बचा कर खाना अपने बैग में डाल देती है।

नर्स, जो अपनी मुस्कराहट बिखेरकर और सेवा कर

मरीजों को आधा दर्द दूर करती है, की भी अपनी व्यथा है। वह सुबह तीन घंटे और शाम तीन घंटे सफर कर पूरी रात अस्पताल में काम कर जितना कमाती है, उसका 90 प्रतिशत घर की किशत में डाल देती है। लाख कठिनाइयों के उपरान्त भी मनुष्य जीने की चाह और उज्ज्वल भविष्य की कामना जीवन के अंतिम क्षणों तक नहीं त्याग पाता है। यह तथ्य लेखक को तब पता चलता है जब वह कैंसर से पीड़ित 84 वर्षीय पापा को स्वास्थ्य में कुछ सुधार होते ही, बड़ी लगन से सौ मिलियन फोरेन्ट की लाटरी के नम्बर भरते हुए देखते हैं।

‘तख्ती’ कहानी में दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली, कामचोर अध्यापकों के आलस्य, माँ-बाप का विश्वास तोड़ते, उनका पैसा नष्ट करते विद्यार्थियों और शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों की उदासीनता पर करारा प्रहार किया गया है। यहाँ तक कि लेखक को लगता है, ‘जब मुझे यह लगने लगा कि मैंने जो कुछ भी अब तक पढ़ा है वह ‘दोग’ था तो मुझे बहुत खुशी भी हुई...क्योंकि यदि वे (अध्यापक) वास्तव में गंभीररता से पढ़ा देते तो शायद मैं कहीं का न रहता।’²⁷

मंत्रीगण के वोट माँगने पर लेखक के व्यंग्यात्मक शब्द दृष्टव्य है- “मंत्री जी पूरे चार साल सात महीने सोते रहे थे, फिर उनकी नींद हाईकमान की डॉट से खुली तो आँखें मलते-मलते चुनाव क्षेत्र में पहुँच गए थे।”²⁸ ‘नया गणित’ में तो भोलू को एम. एल. ए. का टिकट पाने के लिए मंत्री महोदय के घर सात साल तक रसोइयाँ बनकर काम करना पड़ा। भोलू के कथनानुसार, “सात साल से एम. एल. ए. का टिकट पाने के लिए रोटियाँ डाल रहा हूँ..अबकी पक्का है।”²⁹

‘गिरफ्त’ में राजनीति और चिकित्सा दोनों का पर्दाफाश किया गया है। भारत में जन्मतिथि, पुण्यतिथि मनाने का बड़ा चलन है, कार्यक्रमों का आयोजन कर सरकारी पैसा बहाना, लगे हाथों अपना उल्लू सीधा करना-कोई नई बात नहीं। राजनीति में कदम डालने की लालसा किसी भी व्यक्ति को हो सकती है। ‘अपार धन’ व्यापक संपर्क, सैंकड़ों चमचे, पचासों गुण्डे...³⁰ किसे अच्छा नहीं लगता।

किसी नेता की पुण्य-तिथि है तो अस्पताल में ओ.पी.डी. मरीजों के लिए बंद कर रक्तदान शिविर का आयोजन हुआ, जहाँ गीता प्रधानमंत्री को प्रभावित करने के लिए अस्पताल वालों के मिली-भगत से रक्तदान करने का ढोंग करती है। गीता लेटकर खून दान कर रही थी, जो वास्तव में पलंग के नीचे, पर्दे में छिपे मल्लू का खून है, मल्लू अपनी गरीबी और शराब की लत से मज़बूर अपने शरीर का कोई भी अंग किसी भी दाम में बेच सकता है। मल्लू अपने रक्त के दाम में मिले पैसों का कसकर पकड़े हुए तब तक पैसा खर्च करने के सपने

देखता रहा, जब तक उसके सूख, कमजोर शरीर से सारा रक्त बह गया और वह प्राण खो बैठा।

‘लड़कियाँ’ और ‘अपनी-अपनी पत्नियों का सांस्कृतिक विकास’ नामक दोनों कहानियाँ नायिका प्रधान है। ‘लड़कियाँ’ कहानी में श्यामा के माध्यम से उन असंख्य लड़कियों की व्यथा व्यक्त हुई है जो आए दिन दहेज की कभी न खत्म होने वाली माँगों के कारण जलाई जाती है। मायके वाले भी बेटी को यह कहकर ससुराल भेजते हैं-‘बेटी, तुम्हारी डोली इस घर से जा रही है, अब तुम्हारी ससुराल से तुम्हारी अर्थी ही निकले।’³¹ दरोगा जली हुई दुल्हनों की लाशों की भीड़ देख काम बड़ जाने के कारण परेशान है। अदालत, अख़बार, पुलिस, प्रशासन, जनता सब जलती दुल्हनों को देख अफसोस तो व्यक्त करते हैं किंतु किसी के पास कोई समाधान नहीं। मानव अधिकार समिति वाले भी यही कहते हैं कि लड़की स्वयं अपनी सहायता करे तो तभी कुछ बचाव हो सकता है। उसके शब्दों में, ‘हमने इस तरह के बीस हज़ार मामलों का पता लगाकर मुकदमें दायर कराए हैं। लेकिन आमतौर पर अपराधी बच निकलते हैं...बोलो...जब तक तुम नहीं बोलोगी हमारी आवाज़ कोई नहीं सुनेगा।’³²

मध्य प्रदेश के एक शहर में हो रहे फिल्म शूटिंग की घटना पर आधारित कथा ‘अपनी-अपनी पत्नियों का सांस्कृतिक विकास’ के माध्यम से लेखक ने इस तथ्य को उजागर किया है कि नारी स्वतंत्रता, नारी-मुक्ति, महिला शक्ति, महिला साहस जैसी बातें करना सरल है। किंतु जब बात अपने घर, अपनी पत्नी की होती है तो सारे मूल्य, सारे आदर्श व्यर्थ प्रतीत होते हैं।

कमला नामक पात्र की माँ का रोल निभाने के लिए एक नारी पात्र की आवश्यकता पड़ने पर फिल्म बनाने वालों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। तारबाबू अपनी पुत्रवधू को रोल करने से यह कहकर रोकते हैं कि यह वेश्याओं का काम है। शीला जी सुंदर, सुशील, चालीस वर्षीय, तीन बच्चों की माँ और अध्यापिका है। वह न चाहते हुए भी यह अभिनय करने से मना करती है क्योंकि ‘ये मना करते हैं।...‘यों’ का मतलब...शीला जी के पति। ‘ये’ का मतलब अर्थशास्त्र में पीएच-डी और वरिष्ठ प्राध्यापक।’³³ एक शिक्षित, उच्च विचारों वाला व्यक्ति भी अपनी पत्नी को आवश्यकता से अधिक उड़ान भरने से रोकता है। मलकानी ने तो शीला के पति के बारे में खूब खरी-खोटी कही। उनके अनुसार ‘वह आदमी शीला जी के सांस्कृतिक विकास में एक बाधा है।’³⁴ लेकिन वही मलकानी जब लेखक को चाय पिलाने के लिए घर ले जाता है तो वहाँ लेखक को मलकानी

की पत्नी की सूरत कथा आवाज़ भी सुनने को नहीं मिलती क्योंकि वह पर्दे के पीछे से चम्मच खटखटाकर पति को चाय-पकौड़े ले जाने का संकेत देती है। लेखक चाय पीकर तो चले गए, लेकिन इसी सोच में दबे रहे कि वह आदमी तो शीला जी के सांस्कृतिक विकास में बाधा था तो स्वयं मलकानी कथा है?

असगर वजाहत जी का यह कहानी-संग्रह मन-मस्तिष्क को जागरूक कराने वाला है, भाषा की सुंदरता भाषा की विविधता में छिपी है। हस्वेदस्तूर, बादशाहत, आबरू, फिरकापरस्ती, जैसे उर्दू शब्दों की भरमार है। वातावरण के दृश्यों को पढ़कर मानो वह दृश्य मस्तिष्क में सजीव हो उठते हैं। लेखक ने प्रश्न-शैली का प्रयोग कर प्रश्नों की कड़ी बनाकर मानो पाठकों के कोरे मस्तिष्क को झकझोरने का प्रयास किया है। संवाद शैली में उद्भूत चमत्कार है।

संदर्भ-

1. असगर वजाहत, मैं हिंदू हूँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2007 के अग्रिम फ्लैप से।
2. वही, पृ. 41
3. वही, पृ. 40
4. वही, पृ. 40
5. वही, पृ. 35
6. वही, मैं हिंदू हूँ, संग्रह की कहानी, जख्म, पृ. 7
7. वही, जख्म, पृ. 7
8. वही, पृ. 8
9. वही, पृ. 8
10. वही, पृ. 16

11. वही, पृ. 10
12. वही, पृ. 11
13. वही, मुश्किल काम, पृ. 34
14. वही, गुरु चेला संवाद, पृ. 102
15. वही, पृ. 101
16. वही, पृ. 106
17. वही, पृ. 105
18. वही, शीशों का मसीहा कोई नहीं पृ.126
19. वही, शाह आलम कैम्प की रूहें, पृ.148
20. वही, पृ. 149
21. वही, पृ. 151
22. वही, पृ. 150
23. वही, मेरे मौला, पृ. 145
24. वही, तेरह सौ साल का बेबी कैमिल, पृ. 141
25. वही, नाच, पृ. 26
26. वही, होज़ वाज़ पापा, पृ. 62
27. वही, तख्ती, पृ. 92
28. वही, नया गणित, पृ. 23
29. वही, पृ. 23
30. वही, गिरफ्त, पृ. 28
31. वही, लड़कियाँ, पृ. 127
32. वही, पृ. 131
33. वही, अपनी-अपनी पत्नियों का सांस्कृतिक विकास, पृ. 50
34. वही, पृ. 50

हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, हज़रतबल, कश्मीर

साठ के आस-पास की कविता और धूमिल

डॉ. सरोज अग्रवाल

सन् 1960 के आसपास की कविता का जब हम लेखा-जोखा करने लगते हैं तो नयी कविता से कटकर कहीं चल सकते। नयी कविता में वैचारिक प्रतिबद्धता के आधार पर दो धारायें मिलती हैं-प्रगतिशील धारा और दूसरी वह धारा है जिसका चिंतन व्यक्ति-केन्द्रित, आत्मकेन्द्रित है। यद्यपि प्रगतिशील आंदोलन सन् 1951 के आस-पास सांगठनिक स्तर पर अपने अन्दरूनी अंतर्विरोधों के चलते बिखर जाता है। फिर भी नयी से बाहर रहते हुए भी त्रिलोचन, नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल रचनारत थे। कह सकते हैं इन कवियों का महत्त्वपूर्ण लेखन इसी दौर में सामने आता है। वहीं नयी कविता के भीतर रहते हुए मुक्तिबोध, शमशेर, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, केदारनाथ सिंह आदि अपने अंतर्विरोधों के बावजूद यथार्थ-लेखन की परंपरा से जुटते हैं। तीसरा-सप्तक 1959 तक आते-आते तो नयी कविता से दम घोटने वाला कुहासा छटता भी जा रहा था। कुछ वक्तव्यों और व्यक्तिवादी रूझानों के बावजूद कुछ कवि जिंदगी के निकट आ रहे थे। यह सही है कि प्रमुख धारा अभी भी मनोगतवादी बनी मानसिक क्रीड़ा, नपुंसक आक्रोश और प्रयोगवादी अराजक तत्त्वों से भरपूर थी। इसी का परिणाम था साठ के आस-पास साहित्य में आयी अराजक स्थिति नकारात्मक मूल्यों की हिमायती हो उठती है। उनके भीतर अपने मूल्य, परंपरा, संस्कारों से कोई लगाव नहीं रह जाता। 'सर्वस्वनिषेध' की चेतना साठ के बाद के कवियों के भीतर घर कर जाती है।

दरअसल प्रयोगवाद के भीतर अज्ञेय ने व्यक्तिवाद की जो नींव दी थी, वह किसी मुकम्मल सोच या दृष्टि के अभाव में पतनोन्मुख रूप ले लेता है। उसी साहित्यिक व्यक्तिवाद की अराजक परिणति साठोत्तरी दौर में होती है। नयी कविता के दौर में जो व्यक्तिवाद मौजूदा अवस्था को बनाये रखने का तार्किक आधार दे रहा था, वही साठ के आस-पास सर्वतोमुखी निषेध के आत्मघाती अराजकतावाद में परिणत होता है। अराजकतावाद ऊपर देखने में तो व्यवस्था विरोधी रूप लेता

दिखायी देता है। इसमें सामाजिक व्यवस्था के प्रतिबिम्ब होते हैं, एक मायने में यह भी सही है। पर अराजकतावाद ऐसा बिच्छू भी है जिसका 'पेट' फाड़ता है उसी को डसता भी है। आत्मघाती दिशाहीन परिणति भी इसकी होती है। साथ ही यदि यह दिशा ग्रहण कर ले तो जनसामान्य के गुस्से, आक्रोश को ढोता व्यवस्था के प्रतिपक्ष में खड़ा है और आगे चलकर जनवादी शक्तियों का आधार लेने लगता है। पर इस दौर की अराजकता किसी सही वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव में दिशाहीनता का शिकार होती है। क्योंकि विध्वंसात्मक चेतना जब तक दिशाबद्ध नहीं होगी वह सृजनात्मक रूप नहीं ले सकती।

वस्तुतः नयी कविता के दौर से ही अज्ञेय, भारती, साही, जगदीश गुप्त आदि के द्वारा जिस तरह की यथार्थ विरोधी, व्यक्तिवादी, गैर राजनीतिक किस्म की कवितायें रची जा रहीं थीं जिसमें निराशा, कुंठा, हताशा आदि के वर्जन के रूप में सामाजिक, सांस्कृतिक ह्रासशीलता का जो रूप स्पष्ट हो रहा था उसी का चरम पतनशील रूप अकविता में दिखायी देता है। इस संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह का यह कथन उल्लेखनीय है "इस प्रवृत्ति की नींव उसी दिन पड़ गयी थी, जब साहित्य में शीतयुद्ध का व्यक्ति स्वातंत्र्यवादी नारा बुलंद किया गया और इतिहास ने प्रमाणित कर दिया कि अंध कम्युनिस्ट विरोध । क्रमशः किस प्रकार राजनीति विरोध और विचारधारा विरोध । की सीढ़ियाँ उतरता हुआ कोरे अनुभववाद के सहारे अंततः देह की राजनीति में समाहित हो जाता है।"।

इसलिए यह कहना कि नयी कविता से अलग अकविता आंदोलन खड़ा हुआ, उचित नहीं। जिस प्रकार प्रयोगवादी और नई कविता आंदोलनों का सामाजिक जनान्दोलनों के उभार से कोई ज्यादा सरोकार नहीं था उसी प्रकार अकविता आंदोलन की महज कुछ व्यक्तियों द्वारा चलाया गया आंदोलन था। जहाँ निषेध की चेतना तो प्रबल है पर कोई विकल्प नहीं है। 'निषेध का निषेध' आवश्यक है पर गुणात्मक परिवर्तन के लिए ही नहीं तो निषेध का कोई मायने नहीं रह जायेगा।

निम्न पूँजीवादी मानसिकता से ग्रस्त मध्यवर्गीय युवा कवि परिस्थितियों के अंतर्विरोध की सही समझ के अभाव में नकारात्मक रूख ग्रहण करने के बावजूद कोई परिवर्तन नहीं ला पाते। इनका नपुंसक आक्रोश आत्मघाती अराजक रूप ले लेता है। परंपरा से कटे रचनात्मक कुछ कर डालने की लालसा में 'कुछ न कर पाने' की नियति से ग्रस्त हो जाते हैं। यद्यपि यह आंदोलन प्रमुख रूप से बंगाल और आन्ध्र में उभरा पर हिंदी में भी इसकी लहर तीव्र थी। बंगाल में 'भूखी पीढ़ी', 'बीट पीढ़ी' के नाम से शुरू हुई साठोत्तरी कविता को तेलुगु में 'दिगम्बरी पीढ़ी', मराठी में 'आसों' नाम से पुकारा गया। हिंदी में तो अकविता, शमशानी पीढ़ी की कविता, बिटनिक कविता, युयुत्सावादी कविता, सनातनी सूर्योदयी कविता, विद्रोही कविता, नवप्रगतिशील कविता आदि अनेक नाम सामने आये। जगदीश गुप्त ने तो अपने निबंध 'क्रिसिम-क्रिसिम की कविता' में तो लगभग चार दर्जन नाम गिनाये हैं। हिंदी में सबसे अधिक प्रचलित नाम 'अकविता' का रहा, अब तो आमतौर पर साठोत्तरी कविता की एक धारा की कवितायें 'अकविता' नाम से ही जानी जाती हैं। इसकी घोषणा 1963 में प्रकाशित 'प्रारंभ' नामक पत्रिका में हुई। जिसका संपादन जगदीश चतुर्वेदी ने किया था। बाद में 1965 से 1969 तक 'अकविता' नामक पत्रिका को जगदीश गुप्त और श्याम परमार निकालते रहे। 'प्रारंभ' में तो अकविता का आंदोलन 'एण्टी पोयट्री', 'कविता के निषेध' के रूप में सामने आया, पर श्याम परमार का कहना था कि पश्चिम में सैंड बर्ग आदि ने जो 'एण्ट्री-पोयट्री' का नारा दिया है यह उससे भिन्न है। उनका कहना था 'हिंदी कविता में उभरते हुए नये अंजान को ही अकविता कहा जाना चाहिए।'

'राष्ट्रवादी' 1968 सं. हरिनारायण व्यास। जहाँ वे विरोधी प्रवृत्ति ग्रहण करते परंपरा, मर्यादा, अनुशासन आदि को व्यंग्यपरक दृष्टि से तो कभी घृणा की दृष्टि से देखते थे। इन अकवितावादियों में श्याम परमार, सौमित्र मोहन, जगदीश चतुर्वेदी, मोना गुलाटी, निर्भय मल्लिक, राजकमल चौधरी, चंद्रकान्त देवताले, रमेश गौड़ आदि के नाम काफी चर्चित हुए। इन कवियों की रचना-प्रक्रिया अस्वीकार की या सर्वस्वनिषेध की रही। यद्यपि साठ के बाद जनता के सामने जो चुनौतियाँ और समस्यायें थी वे और बढ़ती ही हैं। व्यवस्था की अमानवीयता, निर्ममता, आतंक, भ्रष्टाचार, दमन, शोषण आदि की प्रक्रिया और तीव्र रूप ले लेती है। पर इन कवियों का भारतीय समाज और राजनीति के सामाजिक जनाधार दिशा, संघर्ष और प्रकृति से कोई सरोकार नहीं रहा, वरन् कुछ व्यक्तियों की परिकल्पनाओं के आधार पर ही नये-नये आंदोलनों

में कोई गहरी सामाजिक प्रेरणा न होने के कारण कोई सार्थक रचनाधार्मिता आकार न ले सकी। फलतः वह अप्रभावी रही। उसके मूल में इन रचनाकारों की वैयक्तिक मध्यवर्गीय महत्वाकांक्षा थी जो प्रचार में आना चाहती थी। एक ही रचनाकार एक साथ कई काव्यान्दोलनों से भी जुड़ता है। हर कवि स्वयं को दूसरे से अलग सिद्ध करने की कोशिश में लगा रहा। इसी प्रयत्न में इस दौर में अनेक लघु पत्रिकायें भी निकलीं। इन पत्रिकाओं को कोई प्रवृत्तिमूलक नाम देकर एक अलग धारा के प्रवर्तन की कोशिश रहती थी। निरंतर अनस्तित्व की स्थिति को झेलती पीढ़ा का आक्रोश, विक्षोभ, अनास्था, निषेध का स्वर ही अकविता का स्वर है, जहाँ कवि खंडित मानसिकता और विभाजित संवेदना को लेकर युग की निर्ममता से लड़ने की असफल कोशिश करता है। युगीन भयानक सत्य को नंगे रूप में प्रस्तुत करने के कारण ये कवि स्वयं अराजक रूप ले लेते हैं। हम कह सकते हैं नयी कविता का व्यक्ति ही जो प्रकाश की किरण टटोलता भटक रहा था वहीं अपने अन्तस् के अंधकार से ग्रस्त हो दिशाहीन हो जाता है। उसका समूचा 'प्रत्यक्ष साधात्कार' अपनी ईमानदारी के बावजूद कोई सार्थक प्रभाव नहीं पैदा कर पाता। उसका असर बड़ा बेकार और धिनौना साबित होता है। जो अपने समय की विभीषिकाओं और विकृतियों के प्रति घृणा पैदा करने की बजाय कविता के प्रति ही घृणा पैदा करता है। जैसे जगदीश चतुर्वेदी लिखते हैं-नंगे होंगे हर कोढ़ के घाव लिए मानवता चीख रही है लगातार/ नीली पड़ी देह और सूखे हुए वस्त्र लिए स्त्रियाँ/ गर्भाधान से डरती हैं/निरापद नहीं है इंसान के पिल्ले और बिल्लियों के शिशु/एक गोल कटघरे में बंद सब कराह रहे हैं।²

परंतु अपनी कराह और असहायता को सामाजिक जामा पहनाते हुए 'प्रारंभ' की भूमिका में कवि लिखता है- "इन युवा आक्रोशी कवियों में असमाजिकता कहीं भी नहीं है। वे समाज का विध्वंस नहीं करना चाहते, मात्र परिवर्तन चाहते हैं।" परंतु परिवर्तन कैसा चाहते हैं, उसकी दिशा क्या हो बदली व्यवस्था का स्वरूप क्या होगा? आदि प्रश्नों से उनका कोई वास्ता नहीं था। अनिश्चय की स्थिति कवियों को स्वैराचार और यौन उच्छृंखलता की ओर भी ले जाती है। रचनात्मक सृजनशीलता के नाम पर भोंड़े, घृणित, नग्न यौन चित्रों को उकेरा गया है। जिनमें स्त्री की योनि, जांघ, नाभि, नंगे-स्तन, जनेन्द्रिय, चूत, चूतड़ जैसे अश्लील, वीभत्स शब्दों की भरमार है। जगदीश चतुर्वेदी, मोना जनेन्द्रिय, चूत, चूतड़ जैसे अश्लील, वीभत्स शब्दों की भरमार है। जगदीश चतुर्वेदी, मोना गुलाटी, राजकमल चौधरी, सौमित्र मोहन आदि के लिए समसामयिक

विसंगतिपूर्ण स्थितियों में 'पेट की भूख' से बढ़कर 'देह की भूख' सालती है।

यहीं हम देखते हैं कि वे ही रचनाकार जो सामाजिक प्रतिबद्धता को साथ लेकर नयी कविता के भीतर सर्जनात्मक प्रक्रिया से जुड़े थे। वह धारा की अंतर्सतह पर चलती रही। मुक्तिबोध की लंबी कविता 'अंधेरे में' इसी दौर में अकविता के प्रभाव से अछूती रहकर लिखी गयी। जहाँ वे 'अभिव्यक्ति के खतरे' उठाने की बात करते हैं। खतरे तो अकवितावादियों ने भी उठाये, पर सही पहचान के बिना ही। यह आवश्यक है कि खतरा उठाने के पहले उसे भली प्रकार पहचाने। अन्यथा उसका वही हस्त होगा जो अकवितावादियों का हुआ। पर मुक्तिबोध की सजक दृष्टि युग की विसंगतिपूर्ण स्थिति का सही जायजा लेती है।

रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और केदारनाथ सिंह का तो महत्त्वपूर्ण लेखन इसी दौर में हुआ। आगे चलकर सन् 1965-66 के आसपास धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, कुमार विमल आदि की रचनायें भी आयीं, जो मध्यवर्गीय अराजकतावाद को बहुत हद तक ढोती हुई भी तीव्र व्यवस्था-विरोध के चलते धीरे-धीरे जनवादी चरित्र ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार साठ के बाद की कविता में कथाकथित अकवितावादियों की कविता के साथ ही सामाजिक-यथार्थ-चेतना से जुड़ी रचनात्मक सृजनशीलता की एक धारा भी मौजूद रही। जो संगठन के स्तर पर तो बिखर गयी थी पर अनेक रचनाकार युग की चुनौतियों को स्वीकारते, संघर्ष करते सृजनरत थे। निःसंदेह प्रगतिशील कवियों की परंपरा भी मौन ढंग से आगे बढ़ रही थी।

खासतौर से रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, केदारनाथ सिंह में तो अभूतपूर्व बदलाव आया। रघुवीर सहाय का 'हंसों-हंसों जल्दी हंसों', 'आत्महत्या के विरुद्ध' और सर्वेश्वर के 'कुआनो नदी', 'जंगल का दर्द' आदि में बदला तेवर दिखायी देता है। जहाँ वे व्यवस्था विरोधी स्वरों से लैस होकर व्यंग्यधर्मी चेतना के साथ सामने आते हैं। ये कवितायें समसामयिक व्यवस्था की अंतर्विरोधी स्थितियों, उनकी असंगतियों की तह में जाकर उसकी गहन छानबीन करती हैं। व्यवस्था के क्रूरतम अमानवीय रूप का पर्दाफाश करते हुए, स्थितियों को बदलने की छटपटाहट या कशमकश भी दिखायी देती है-कंकड़ों में रेंग रहा है सांप/लाठियाँ मारने पर भी वह सुरक्षित है/क्या प्रतीक्षा करूँ/जब तक वह/समतल भूमि पर न आ जाय/या अपना अस्त्र बदल दूँ।

'जंगल का दर्द' सर्वेश्वर की बेचैनी की 'प्रतीक्षा करूँ' या फिर लगता है कि नहीं 'अपना अस्त्र ही बदल लूँ वैषम्यपूर्ण विडम्बनात्मक स्थितियों के विरुद्ध संघर्ष की महती आकांक्षा

केदारनाथ सिंह में भी दिखायी देती है। स्थितियों के दबाव में श्रीकांत वर्मा और कैलाश बाजपेयी भी व्यवस्था-विरोधी रूख अख्तियार करते हैं पर चेतनात्मक धरातल पर वे नितान्त व्यक्तिवादी परिणति लेते दिखाई देते हैं, इसलिए उनका गुस्सा शांत निरर्थक आक्रोश की शक्ति लेकर रह जाता है। जिसकी आत्मघाती अराजक परिणति तो हमें अन्य अकवितावादियों में शीर्ष पर दिखायी ही देती है।

इस प्रकार सातवें दशक की रचनाशीलता में कुंठा और निषेध के साथ ही विद्रोह और आक्रोश के तेवर भी प्रबल रूप से विद्यमान थे। अकविता का यही विद्रोही तेवर सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में अपने अतिवादों के बावजूद सुनिश्चित दिशा की ओर अग्रसर होता है।

साधुओं/भीख मंगे, अफीमची, रंडियों की काली अंधी दुनिया में/मसानों में/क्योंकि अधजली लाश नोचकर खाते रहना श्रेयस्कर है जीवित पड़ोसियों को खा जाने से। 'मुक्ति प्रसंग' शोषक शासक वर्ग द्वारा विविध स्तरों पर पैदा किए गये संकटों का एहसास भी इस दौर के कवियों को होने लगा था। पर अपनी सही समझ के अभाव में ये कवि झसशील पूँजीवादी सामंती विचारधारा के शिकार भी होते हैं। राजकमल चौधरी का अराजकतावाद भी इसी की देन है। फिर भी उनकी कविताओं में एक ताकत जरूर थी जो उनकी संघर्ष-चेतना को आगे की ओर ले जाती, जिसके लिए वे जीवित ही न रह सके।

परिवेशगत इस विसंगतिबोध की व्यंग्यपरक बेबाक अभिव्यक्ति सौमित्र मोहन की 'लुकमान अली' में भी मिलती है। जीवन के जटिल यथार्थ का साक्षात्कार करने के लिए नाटकीय शैली प्रयोग में यह कविता अपनी अलग पहचान लेकर आती है। वर्तमान को देखने की उनकी पैनी दृष्टि अनौपचारिकता के साथ सच्चाई को उपस्थित करती है-लुकमण अली सिर्फ दर्शक है, अन्याय भ्रष्टाचार/मूल्यहीनता और नारे लगाने वाली भीड़ का...../“लुकमान अली के लिए स्वतंत्रता उसके कद से केवल तीन इंच बड़ी है/वह बनियान की जगह तिरंगा पहनकर कलाबाजियाँ रचता है/वह जानता है कि चुनाव/लोगों की राय का प्रतीक नहीं/धन और धमकी का अंगारा है।”

युगीन भयावह स्थिति को बेनकाब करता कवि अपने अंतर्मन की बेचैनी की नाटकीयता के साथ स्मृति चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। इसी दौर में लिखी गयी रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, कैलाश बाजपेयी, लीलाधर जगूड़ी की कवितायें भी आत्मपरक ढंग से व्यवस्था के तिलस्म का पर्दाफाश करती हैं। अमानवीय क्रूरतम शासक-वर्ग की खिलाफत

करते हुए इन कवियों की कवितायें व्यर्थता बोध, एबसर्डिटी सिनिसिज्म, जीभ और जांघ के चाकू मुहावरे से मुक्ति नहीं ले पाती। धूमिल पर भी अकवितावादियों का प्रभाव था, बावजूद इसके धूमिल क्रूर और अमानवीय होती व्यवस्था से टक्कर लेते नये अर्थवान मूल्यों की तलाश की तड़प भी लिए हैं। यद्यपि सही चिंतन से टक्कर लेते नये अर्थवान मूल्यों की तलाश की तड़प भी लिए हैं। सही चिंतन से न जुट पाने के कारण अराजकतावाद के शिकार भी होते हैं। फिर भी चाहे लीलाधर जगड़ी हो या धूमिल उनकी कविताओं के तेवर, रूप और अंतर्वस्तु ऐसी रही जिसका असर बाद तक चलता रहा। जनवादी लेखन की पृष्ठभूमि निर्माण में इन रचनाकारों का योगदान अप्रतिम रहा। अप्रैल सन् 1968 में प्रकाशित धूमिल की 'पटकथा' कविता तो काव्य-लेखन के क्षेत्र में आये बदलाव को गुणात्मक ढंग से उपस्थित करती है। इस कविता में असंगत अराजक सत्तासीन वर्ग के प्रति तीव्र आक्रोश और गुराहट है। यद्यपि यह भी सच है कि धूमिल किसी सुनिश्चित चिंतन से जुटकर विकल्प की तलाश नहीं करते, यही कारण है उनमें बड़बोलापन और दुस्साहसिकता भी है। फिर भी उनमें एक गहरी समझ है जो पूरे रचनातंत्र में बदलाव लाने की चेतना पैदा करती है। स्वतंत्रता के बाद दिनोंदिन बदतर होती जा रही स्थिति में एक संवेदनशील रचनाकार के लिए यह ज़रूरी और अहमियत से भरा कार्य होता है कि यथास्थिति की जड़ता को तोड़ने के लिए जनता को जागृत करे।

धूमिल भी अपने मध्यवर्गीय चरित्र का रूपान्तरण कर जनचेतना की मुक्ति के प्रयास में शामिल होने की चेष्टा करते हैं। पर वर्गीय चरित्र की सही पहचान के अभाव में ये मुक्तिबोध से भिन्न इनकी भावात्मक सघनता निम्न पूँजीवादी मानसिकता के अंतर्विरोधों से ग्रस्त हो जाती है। पर आज़ादी मिलने के बाद निरंतर बढ़ते जा रहे संकटों का एहसास 'पटकथा' में तीखा रूप लिए हुए हैं। धूमिल भिन्न तेवर लेकर जानी-पहचानी भाषा में अपनी बात रखते हैं। जनता के फटेहाली, गरीबी, मोहभंग आदि से जुटे अनेक सवाल इसके मूल में हैं। समकालिक यथार्थ का जायजा धूमिल जनवादी कवि के रूप में नहीं वरन् निम्न मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की तीव्र-संवेदन-क्षमता के तहत आम आदमी की समस्याओं से रूबरू होते हैं। तथाकथित आज़ादी के प्रति मोह भी भारतीय जनमानस में विद्यमान था इसलिए बार-बार वह सत्ता-वर्ग द्वारा दिए गये आश्वासनों पर विश्वास करते हुए 'खुशहम इरादों' के बीच जीते जो नहीं था उसका भी इंतजार करते रहे। उन्हें लगता है-अब कोई बच्चा भूखा रहकर स्कूल नहीं जायेगा/अब कोई छत बारिश में नहीं टपकेगी/अब कोई

आदमी कपड़ों की लाचारी में अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा/अब कोई दवा के अभाव में घुट-घुटकर नहीं मरेगा/अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा/ अब कोई किसी को नंगा नहीं करेगा/कारण अब यह जमीन अपनी है/आसमान अपना है।³ पर यह स्थिति बहुत दिनों तक बनी न रह सकी। पंचशील, विश्वशांति, हिंदू-चीनी भाई-भाई के नारों की असलियत खुलकर सामने आ गयी और धूमिल लिखते हैं-मैंने अचरज से देखा कि दुनिया का/सबसे बड़ा बौद्ध मठ/बारूद का सबसे बड़ा गोदाम है।⁴

इस प्रकार नेहरू सरकार के झूठे आश्वासनों के बीच बदहाली, भ्रष्टाचार और विदेशी, खूनी पंजों में जकड़ी जनता शोषण की चक्की में पीसती रही। 'जनतंत्र' में जनता के राज्य में जनता के लिए केवल एक शब्द है-कुहरा, कीचड़ और कांच से बना हुआ, यह जनता एक भेड़ है, जो दूसरों की ठंड के लिए अपनी पीठ पर ऊन की फसल ढो रही है। "क्योंकि अपने यहाँ जनतंत्र/एक ऐसा तमाशा है/जिसकी जान मदारी की भाषा है/संसदीय राजनीति की नाटकीयता का पर्दाफाश करते हुए धूमिल लिखते हैं-वहाँ यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं/सिर्फ टोपियाँ बदल गयीं/जहाँ न कोई प्रजा है, न कोई तंत्र है/यह आदमी के खिलाफ/आदमी का खुलासा षड्यंत्र है। वह धूमिल के शब्दों में-संसद तेली की वह घानी है/जिसमें आधा तेल और आधा पानी है।

जनमानस के भीतर इस स्थिति से उबरने की बेचैनी भी है, पर अपनी वर्गीय स्थिति के कारण परिवर्तन की गति कुछ इस तरह रही कि 'कोख भी ढकी रहे और विरोध में उठे हाथ की मुठ्ठी भी तनी रहे।' फिर भी 'खोई हुई आज़ादी का अर्थ ढूँढ़ते' धूमिल लोक चेतना को/बार-बार टेरता रहा' 'उन्हें बताते रहे' तुम अकेले नहीं हो/लाखों हैं जो तुम्हारे इंतज़ार में खड़े हैं वहाँ चलो/ यह दीवार जो तुम्हारी आदत का हिस्सा बन गई है/इसे झटककर अलग करो/अपनी आदतों में फूलों की जगह पत्थर भरो/मासूमियत के हर तकाजे को ठोकर मार दो/अब वक्त आ गया है कि तुम उठो/और अपनी ऊब को आकार दो।

इस प्रकार धूमिल अपने समय की सच्चाई का तीव्रता से एहसास करते हुए उसके प्रति उग्र विरोध प्रकट करते हैं जिसमें उनके ग्रामीण संस्कार और भाषा का तल्लू सामान्य रूप रोजमरों के जीवन से जोड़ता है। पर जब धूमिल 'पटकथा' के अंत में लिखते हैं-मेरे सामने वही चिरपरिचित अंधकार है/संशय की अनिश्चयग्रस्त ठंडी मुद्रायें हैं/हर तरफ शब्दभेदी सन्नाटा है/दरिद्र की व्यथा की तरह/उचाट और कूथता हुआ/घृणा में डूबा सारा का सारा देश/पहले की ही तरह आज

भी/मेरा कारागार है।”⁵

कवि की अनिश्चयात्मक स्थिति संशय भाव कहीं उन्हें निराशा की ओर तो नहीं ले जा रहा? पर धूमिल जैसा जनसंवेदना का वाहक कवि निराशावादी भी नहीं हो सकता। ‘तिलिस्म का जादू उतारने के लिए’ जनता को जागृत करने वाला कवि लोकचेतना से दूर कैसे हो सकता है। उपरोक्त अंतर्विरोध उनकी साम्राज्यवादी सामन्ती मानसिकता से ग्रस्त होने का परिणाम है जहाँ वे युयुत्स, क्रांतिकारी बने हुए भी बदलाव की दिशा की पहचान नहीं कर पाते धीरे-धीरे धूमिल इस अंतर्विरोध से मुक्त होते दिशा की सही पहचान भी करने लगे थे। जीवन के अंतिम काल में लिखी गयी डायरी से इस प्रकार की बहुत सी बातें स्पष्ट होती हैं। अप्रकाशित डायरी में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि अन्य समकालिक कवि जहाँ सुविधा परस्ती और अवसरवादिता के शिकार हो गये वहाँ वे अकेले साहस के साथ संघर्ष करते रहे। लिखते हैं-‘कविता एक’ ‘स्वीकृत समूह’ को समर्पित होती है लेकिन मोर्चे पर भाषा के साथ केवल कवि जूझता है-अकेले और बिल्कुल अकेले/यह उसकी नियति है।⁶

अतः युगीन विडंबनाओं को नाटकीय व्यंग्यपरक अभिव्यक्ति उन्हें यथार्थ की जटिल गहराईयों में उतारती है। जहाँ लोक संवेदना से गहराई से साथ जुटता कवि उससे मुक्ति की गहरी बेचैनी और तड़प लिए हैं/कहीं अन्याय और शोषण के विरुद्ध अपने भीतर की चीख को बेचैनी को ही कविता बनाना चाहता है। तभी तो धूमिल के लिए कविता शब्दों की अदालत में/मुजरिम के कटघरे में खड़े/बेकसूर आदमी का/हलफनामा है/या फिर कविता बनाना चाहते हैं। साथ ही यह उनके विकास की सूचना भी है कि वे समझते हैं कि हर बौखलाहट कविता के ‘सार्थक वक्तव्य’ होने की भी हिमायत थी। धूमिल की अन्य अनेक कविताएँ-‘रोटी और संसद’, ‘किस्सा जनतंत्र’, ‘सिलसिला’, ‘मोचीराम’, ‘जलता जनतंत्र’, ‘बजट का अंधेर’ आदि अपने समसामयिक परिवेश की जीवंत दस्तावेज हैं। जिसमें युगजीवन की विसंगतियों, गतिहीनता और राजनीतिक दुरभिसन्धियों, विकृतियों का बखूबी दिग्दर्शन किया जा सकता है। इनमें राजनीति

विडम्बनापूर्ण स्थितियों का ऐसा खाका है जो मन को छीलता है, तिलमिलाता है, आंदोलित करता है।

धूमिल की ‘पटकथा’ की ही तरह लीलाधर जगूड़ी की लंबी कविता ‘बलदेव खटिक’ कविता भी अपने समय के विसंगतिबोध, तनावों, विद्वेषताओं और आम आदमी की नियति को उजागर करती सशक्त कविता है। जिसमें कवि की दृष्टि जनसामान्य के संघर्षशील रूप पर टिकती विरोधी रूप ले लेती है।

कथ्य के साथ ही बदली हुई स्थितियों के अनुकूल भाषा की नयी शक्ति लेकर आती है। यद्यपि कहीं-कहीं भाषागत चमत्कार की वजह से संवेदनात्मक लगाव कमजोर पड़ता दिखाई देता है, जहाँ उलझाव, दुरूहता के साथ ही आइडियाँ/लोजी के तहत अनुभव का प्रतिष्ठान मिलता है। ‘जूते और चेहरे’, ‘बच्चा और राजनीति’, ‘गुमशुदा की तलाश’ आदि अनेक कवितायें इसी प्रकार की हैं। फिर भी धूमिल की जगूड़ी की कविताओं का वैशिष्ट्य आगे की दिशा निर्माण और संभावनाओं से भरपूर है।

इस प्रकार सन् 1967 के आस-पास अकविता का अराजक विद्रोही तेवर, उसकी अराजकता और ‘वल्गारिटी’ तिरोहित हुई। जिसके मूल में कहीं नक्सलवाड़ी आंदोलन जैसी ऐतिहासिक घटना और आम चुनाव में कई स्थानों पर गैर कांग्रेसी सरकारों का बनना भी है। जहाँ विपक्ष की भूमिका प्रधान रूप से सामने आती है। असंतोष, अराजक दिशाहीनता, दिशा की ओर मुड़ना शुरू होती है। बाद में तो नयी पीढ़ी का अभ्युदय भी हुआ और समकालीन कवियों की एक नयी जमात उभर कर सामने आयी।

संदर्भ-

1. आलोचना, अप्रैल-जून 1967
2. जगदीश चतुर्वेदी, अकविता-4, पृ. 54
3. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ. 101
4. वही, पृ. 151
5. वही, पृ. 114
6. पहल, 37, पृ. 45।

अज्ञेय की रचनाधर्मिता

डॉ. प्रेमिला देवी

छायावादोत्तर हिंदी कविता को नया अर्थ देने वाले रचनाकारों में अज्ञेय का अप्रतिम स्थान है, वे नयी कविता के 'शलाका पुरुष' हैं, प्रयोगवाद के प्रवर्तक हैं। उन्होंने साहित्य को नयी भाषा दी, नयी भाषा को उन्होंने नयी वेदना दी और वेदना में मानव कल्याण की नयी आकांक्षा भर दी। अज्ञेय नूतन विचारधारा को लेकर चलने वाले कवि ही नहीं, अपितु नूतन काव्यधारा को लेकर चलने वाले कतिपय अन्वेषी कवियों को हिंदी-पाठकों के सम्मुख लाकर खड़े करने वाले नेता भी है। अज्ञेय नवीनतम काव्य-धारा के यशस्वी कवि होने के साथ-साथ इस धारा के कवियों को प्रकाश में लाने वाले, उन्हें नूतनता की ओर प्रेरित करने वाले, उनके लिये काव्य-भूमि तैयार करने वाले, उनकी उपलब्धियों से पाठकों को अवगत कराने वाले, उनकी मान्यताओं की वकालत करने वाले तथा छायावाद एवं प्रगतिवाद पर आक्रमण करके नूतन वस्तु-विन्यास एवं नूतन शिल्प-दृष्टि संपन्न रचनाकार हैं।

अज्ञेय की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं 'भग्नदूत', 'चिंता', 'इत्यलम्', 'हरी घास पर क्षण भर', 'आँगन के पार द्वार', 'सुनहरे शैवाल इत्यादि।

अज्ञेय काव्य का शुभारंभ ही प्रणय की टीस, चुभन, कसक, वेदना, छटपटाहट से हुआ है। कवि की दृष्टि में प्रणय का कोई साधनात्मक रूप नहीं है, अपितु वह तो वासनात्मक रूप को ही अधिक महत्त्व देता है "वे रोगी होंगे प्रेम जिन्हें अनुभव रस का कटु प्याला है, वे मुर्दे होंगे प्रेम जिन्हें सम्मोहनकारी हाला है"

कवि ने प्रणय को मानवी रूप में ही अंगीकार किया है। कवि को दुःख है कि लोग ऐसे नैसर्गिक प्रणय को भी छिपाते क्यों हैं "हाय तुम्हारी नैसर्गिकता! मानव नियम निराला है-वह तो अपने ही में अपना प्रणय छिपाने वाला है।"

इस प्रणय का जीवंत रूप विरह की पीड़ा में विद्यमान रहता है। इसलिये कवि विरह को महत्त्व देता है-"प्रेम के विरह अक्स को गूढ़ होगा तो कहेगा/विरह की पीड़ा न हो तो प्रेम

क्या जीता रहेगा?"

कवि अज्ञेय की कविताओं में सबसे अधिक एक व्यक्तिनिष्ठा कवि का रूप दिखाई देता है। वहाँ न क्रांतिकारी है और न समाज विद्रोही अपितु, संसार के आकर्षण में आबद्ध एक व्यक्ति हैं जो कभी प्रकृति की रमणीयता में शान्ति का अनुभव करता है, तो कभी समाज की विविध समस्याओं में उलझा जान पड़ता है-"मैं कवि हूँ/द्रष्टा, उन्मेषा/संघाता"

अपनी इस व्यक्तिनिष्ठा के कारण वह रात्रि के क्षणों में छिपकती हुयी चाँदनी में अपने अन्तः स्पंदन को क्षण भर जीने का आग्रह करता हुआ कहता है-"ओ प्रिय रहो साथ/भर-भर अंजुरी/पी लो/बरसी/शरद चाँदनी/मेरा/अंतः स्पंदन/तुम भी क्षण भर जी लो।"

कवि अज्ञेय ने एक क्षण की अनुभूति को अत्यंत महत्त्व दिया है। कवि जीवन के प्रत्येक क्षण को अमोघ मानता है, अज्ञेय समझता है और स्वतंत्र एवं स्वच्छंद बताता है-"क्षण अमोघ है, इतना मैंने/पहले भी पहचाना है, इसलिये साँझ को/नश्वरता से नहीं बाँधता।"

कवि एक क्षण की उस अनुभूति को शब्दों के घेरे में बाँध कर रखना चाहता है, उस क्षण के सत्य का सुरभिपूर्ण स्पर्श पाना चाहता है, वह उस क्षण के आलोक से संपृक्त होकर विभोर हो जाना चाहता है, वह 'क्षण' को ही सर्वाधिक महत्त्व देता है-सत्य का सुरभिपूत स्पर्श हमें मिल जाये/क्षण भरः/एक क्षण उसके आलोक से संयुक्त हो/विभोर हम हो सकें/और हम जीना नहीं चाहते।

फिर कवि अज्ञेय की कविताओं में जीवित रहने की इच्छा भी अधिक तीव्रता एवं तीक्ष्णता के साथ व्यक्त हुई है। कवि ने अधुनिक मानव की तड़प, आकुलावस्था एवं उलझन भरी स्थिति का चित्र अंकित करने के लिये तथा जिजीविषा की धारणा को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिये 'मछली' को प्रतीक बताया है और बना दे चितेरे', 'सोन मछली 'मछलियाँ', 'जीवन छाया' आदि कविताओं में इस जिजीविषा की भावना

को इस तरह व्यक्त किया है-“बना दे, चित्तेरे, मेरे लिये एक चित्र बना दे। पहले सागर आँक/सागर आँक कर फिर एक उछली हुयी देह वल्ली में/उसकी जिजीविषा की उत्कृष्ट आतुरता मुखर है।”

आज मानव कुण्ठा एवं पीड़ा का ऐसा शिकार बना हुआ है कि उसका जीना मुश्किल हो गया है। ये कुण्ठायें एवं बेबसी मानव को रात-दिन संतप्त कर रही है और उसे अनेक दुष्कर्मों की ओर प्रवृत्त कर रही है। इसका कारण है आर्थिक असमानता एवं सामाजिक विषमतायें। ये विषमतायें मानव को आज धातु की तरह समाज की भट्टी में गला रही है-भीतर जलते लाल धातु के साथ/कमकरो की दुसाध्य विषमतायें भी तप्त उबलती जाती है/ये मुँहझौंसी चिमनियाँ बराबर/धुआँ उगलती जाती हैं।

आर्थिक असमानता ने कवि के हृदय में पूँजीपतियों के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी है। वे कहते हैं-तुम जो बड़े-बड़े गद्दों पर, ऊँची दुकानों में, उन्हें कोसते हो जो भूखे मरते हैं खानों में, (तुम, जो रक्तचूस ठठरी को देते हो जलदान/सुनो तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनों घृणा का गान)

कवि ने समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता एवं विषमताओं के प्रति आक्रोश, क्षोभ, घृणा ही व्यक्त नहीं की, अपितु इस असमानता को मिटाने के लिये रक्तमयी क्रान्ति का आह्वान किया है-“हमने न्याय नहीं पाया है, हम ज्वाला से न्याय करेंगे-धर्म हमारा नष्ट हो गया, अग्निधर्म हम हृदय धरेंगे।”

अज्ञेय के कवि को विषमता के अंधकार को मिटाकर समानता का आलोक प्राप्त करने की इच्छा है-“कवि एक बार फिर गा दो,-/एक बार फिर आलोक में अंधकार दिखा दो।”

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में नूतन सौंदर्यबोध की भी अभिव्यक्ति की है। वह नवीनता के पुजारी है। इसी कारण उन्हें पुराने उपमान मैले दिखाई देते हैं, पुराने प्रतीक निर्जीव जान पड़ते हैं और पुरानी पद्धति व्यर्थ एवं निस्सार प्रतीत होती है-“अगर मैं तुमको/लजाती साँझ के नभ की अकेली तारिका/अब नहीं कहता,/नहीं, कारण कि मेरा हृदय उथला या सूना है/या कि मेरा प्यार मैला है/बल्कि केवल यही/ये उपमान मैले हो गये हैं/देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच।”

आत्मा एवं परमात्मा के बारे में चिंतन मनन करते हुए आत्मा को परिणीत, वधू एवं परमात्मा को महाशून्य के रूप में स्वीकार करते हैं। अज्ञेय कबीर की तरह आत्मा एवं परमात्मा के विवाह का चित्रण करते हुये कवि कहते हैं-अरी ओ आत्मा री,/कान्या भोली क्वॉरी/महाशून्य के साथ भाँवें

तेरी रची गयीं।/वह महाशून्य ही अब तेरा पथ,/लक्ष्य, अन्न, जल, पालक-पति/आलोक, धर्म।

कवि ने परमात्मा को महाशून्य होने के साथ ही उसे तेजोमय, एकाकी, परमशीतल, तीव्र गतिमय भी माना है-“अकेला:/वह तेजोमय है जहाँ/दीठ बेबस झुक जाती है/वाणी तो क्या, सन्नाटे की गूँज/वहाँ चुक जाती है।”

कवि संपूर्ण जगत को भी शून्य मानता है, जो महाशून्य से ही प्रकट हुआ है और अंत में उसी में विलीन हो जाता है। इस तरह ‘सर्व शून्य शून्यम्’ के सिद्धान्त को मानते हुये लिखा है-विलय होगा/किंतु वह जिस शून्य को बाँधे हुए है/उसमें एक रूपातीत ठंडी ज्योति है।”

कवि अज्ञेय ने प्रकृति सुंदरी के प्रति अगाध प्रेम एवं अनन्य आस्था प्रकट की है। वे प्रकृति के कण-कण में अपने मन के सुख-दुःख का प्रतिबिंब देखते हैं। इस तरह कवि ने प्रकृति के सचेतन रूप का चित्रण बड़ी तत्परता के साथ किया है-“पार्श्व गिरि का नम्र/डगर चढ़ती उमंगों सी/बिछी पैरों में नदी ज्यों दर्द की रेखा।”

साथ ही कवि ने प्रकृति ने अनिंद्य सौंदर्य की रमणीय झाँकियाँ भी अंकित की है-“जागो, जागो,/जागो, सखि, बसंत आ गया! जागो!/पीपल की सूखी खाल रिनग्ध हो चली/शिरीष ने रेशम से वेणी बाँध ली।”

कवि का हृदय अपने देश के कण-कण में रमा हुआ है। गाँव-गाँव में उसकी भावना रम रही है, शहर-शहर में उसके विचार मंडरा रहे हैं। झोपड़ी से हवेली तक वह अपने देश से परिचित है। कवि ने स्वदेशानुराग से प्रेरित होकर ही एक कटु व्यंग्य लिखा है जिसमें देश की स्थिति स्पष्ट की गयी है-“इन्हीं तृण-फूस छप्पर से/ढंके दुलमुल गँवारू/झोपड़ों में ही हमारा देश बसता है/इन्हीं के मर्म को अनजान/शहरों की ढँकी लोलुप/विषैली वासना का साँप डसता है।”/अयानी संस्कृति की दुर्दशा पर/सभ्यता का भूत हँसता है।

नयी कविता में बौद्धिकता का स्वर मुखर रहा है। अज्ञेय का काव्य भी बौद्धिकता के आग्रह से युक्त है। बौद्धिकता के विषय में डॉ. जगदीश गुप्त के ये वाक्य ध्यान देने योग्य हैं-वह (नयी कविता) उन प्रबुद्ध विवेकशील आस्वादकों को क्षित करके लिखी जा रही है जिनकी मानसिक अवस्था और बौद्धिक चेतना नए कवि के समान है। बहुत अंशों में नयी कविता की प्रगति ऐसे प्रबुद्ध वर्ग पर आश्रित रहती है।

अज्ञेय ने अपने काव्य में भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता की प्रतिष्ठा की है-“सुनों कवि।/भावनायें नहीं हैं सोना/भावनायें खाद है केवल/जरा उनको दबाकर रखो/जरा-सा और पकने दो/ताने और तपने दो।”

नयी कविता का प्रांगण आशा एवं अटूट आस्था के स्वरो से मुखरित है। अतः अज्ञेय के काव्य में आस्था के स्वर की उपस्थिति निश्चित है-“मैं आस्था हूँ/तो मैं निरंतर उठते रहने की शक्ति हूँ

स्वातंत्र्य की खोज ही अज्ञेय के काव्य का मुख्य आधार है। अज्ञेय के पूरे कृतित्व में ‘मुक्ति’ शब्द का प्रयोग बहुत हुआ है। यह शब्द कवि मन की मुक्ति की लालसा को व्यक्त करता है। अज्ञेय के व्यक्तित्व की खोज स्वातंत्र्य की ही खोज है-“अपनी हर सांस के साथ/पनपते इस विश्वास के साथ/टिक, हर दूसरे की हर सांस को/हम दिला सकेंगे और अधिक सहजता/अनाकुल उन्मुक्ति और उल्लास।”

अज्ञेय प्रकृति के बीच मुक्त जीवन का सुख वन्य सुख प्राप्त करना चाहते हैं, यह नगर जीवन की भीड़ संस्कृति, कुण्ठा, यान्त्रिक दबाव और वणिक वृत्ति से अपनी निजता को समेटकर दूर भागने का प्रयास है। अज्ञेय की कई कविताओं ने नगर सभ्यता पर व्यंग्य किया गया है। ‘साँप’ शीर्षक कविता में वे लिखते हैं-“साँप!/तुम सभ्य तो हुए नहीं/नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया।/एक बात पूछें-(उत्तर दोगे?)/तब कैसे सीखा डसना-विष कहां पाया?

कवि का ‘अहं’ उसकी वैयक्तिक चेतना को समाज-निरपेक्ष बना देता है। वह अपने व्यक्तित्व की समाज द्वारा मान्यता चाहता है पर उनका अहं उसकी सामाजिक उपयोगिता की स्वीकृति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा बन जाता है। वैयक्तिक अहंवाद के उदाहरण स्वरूप ‘नदी के दीप’ नामक कविता में कवि स्वयं को कथा अपनी विचारधारा के साथियों को ‘नदी

के दीप’ मानकर सामाजिक चेतना की स्रोतस्विनी में खो देने के लिये दृढ़ संकल्प है-“यदि ऐसा हो/यह स्रोतस्विनी ही/कर्मनाशा, कीर्तिनाशा, घोर/काल-प्रवाहिनी बन जाय तो/हमें स्वीकार वह भी/उसी में रेत होकर फिर हनेंगे हम/जमेगे हम।”

अज्ञेय जी ने जिस प्रयोगवादी नवीन काव्यधारा का प्रवर्तन किया, उसका मूल स्रोत पाश्चात्य काव्य है। उनकी मान्यतायें पाश्चात्य कवियों से अधिक प्रभावित हैं। अज्ञेय की काव्य को देखकर ऐसा लगता है कि वे इलियट से बहुत प्रभावित हैं। इलियट के ‘वेस्टलैंड’ कविता की भांति अज्ञेय ने ‘अंधा युग’ नामक कविता में निराशा, घुटन, अकर्मण्यता आदि का चित्रण करके एक ऐसे जीवन दर्शन का चित्रण किया है, जिसमें मानव-द्रोही तत्त्व है-“हम सबके मन में उतर या युग/अंधियारा है, अश्वथामा है, संजय है/है दास-वृत्ति उन दोनों वृद्ध प्रहरियों को,/अंधा संशय है, लज्जाजनक पराजय है।”

सहायक ग्रंथ-

1. अज्ञेय और हिन्दी साहित्य
2. अज्ञेय कवि और काव्य
3. अज्ञेय दूसरा सप्तक
4. अज्ञेय रचना संचयन

**विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, कानपुर विद्या मंदिर
महिला महाविद्यालय, स्वरूप नगर, कानपुर**

समकालीन हिंदी कविता में समाज चेतना: एक अवलोकन

उदयभान भगत

‘समकालीन’ शब्द का शब्दकोशीय अर्थ है-साथ-साथ दिखाई पड़ने वाला, लेकिन हिंदी साहित्य में कविता विधा के अंतर्गत जिन्हें समकालीन कविता कहा गया है वह सन् 60 के बाद रचित कविताएँ हैं। इन कविताओं में सामाजिक हलचल से आलोकित विभिन्न समस्याओं के समाधान के मुद्दों की तलाश की गयी है। साथ ही राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तनों को चित्रित कर वैश्वीकरण के दबाव, सामाजिक व्यवस्थाओं और पूंजीवादी मानसिकता की दोषी ठहराया गया है। वस्तुतः प्रयोगवाद के अंतर तीसरे सप्तक के प्रकाशन के बाद आधुनिक हिंदी साहित्य में कविता का एक नया रूप उभरा, जिसे साठोत्तरी हिंदी या नयी कविता की संज्ञा से अभिहित किया गया। इससे पूर्व इसे अकविता, नई कविता, अस्वीकृत कविता, विद्रोही कविता, प्रसिद्ध कविता, शमशानी कविता व भूखी पीढ़ी की कविता आदि अनेक पड़ावों से गुजरना पड़ा। अनेक पड़ावों से गुजरने के बाद ये सारी कविताएँ समकालीन कविता में विलीन होती गयी। इसमें आधुनिक जीवन बोध, वर्तमान जीवन की असंगतियाँ और उलझने एक प्रौढ़ मानवतावादी स्वर, जीवन का अजनबीपन, अकेलापन, टूटन आदि की प्रवृत्तियाँ उभरी हैं। साथ ही इन कविताओं में अधिकतर सामाजिक, राजनैतिक आदि विषयों के दर्शन होते हैं। समकालीन कवियों की दृष्टि हमेशा युग और परिवेश से आबद्ध रही है। तीखापन उदासीन इनके काव्य की सर्वाधिक प्रमुख गुण हैं। यह तीखापन कहीं व्यंग्यात्मक है तो कहीं करुणा से युक्त है।

आज़ादी के साथ ही मोहभंग की स्थिति उत्पन्न हो गई। नेताओं ने जिन सपनों का जनता के सामने रखा था, वे पूरे नहीं हो सके। विषमता कम होने के बजाय बढ़ती ही चली गयी। बढ़ती हुई महँगाई ने आम आदमी के लिए जीना दूभर कर दिया। राजनीतिज्ञों, प्रशंसकों, पूँजीपतियों ने मिलकर देश को अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए लूटना-खसोटना आरंभ कर दिया। सरकार पूँजीपतियों के हाथ की कठपुतली बन

गई। आज़ादी के बाद जनता पुलिस तंत्र से मुक्त होना चाहती थी, पर धीरे-धीरे पुलिस तंत्र का दबाव बढ़ता चला गया। सन् 1962 में चीन से युद्ध में मुँहकी खाकर यह मोहभंग और भी गहरा गया। समकालीन कवियों की दृष्टि समष्टि चेतना से युक्त है। कवि समाज और जन-मानस को छोड़कर नहीं चलता। जन मानस का सुख-दुख कवि का सुख-दुख है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में राजनीति एवं सामाजिक क्षेत्र में कुछ ऐसा हलचल उत्पन्न हुआ कि कवियों ने भी उस हलचल से आलोकित होकर समाज हित में अपनी लेखनी चलाना शुरू किया। कवियों की यह जमात सामान्य जनता के साथ चलता दिखाई पड़ता है। सन् 1962 में भारत पर चीनी आक्रमण, साम्यवादी दल में बँटवारा, नक्सलवाड़ी आंदोलन, 1967 में कई प्रांतों में गैर कांग्रेसी सरकारों का गठन, 1974 में जे0 पी0 द्वारा समग्र क्रांति, 1975 में आपात स्थिति, 1977 में संपूर्ण हिंदुस्तान की सत्ता गैर-कांग्रेसियों के हाथ में पुनः 1980 में गैर कांग्रेसियों को पराजित करके कांग्रेसियों के हाथ आ गयी- इतनी सारी महत्वपूर्ण घटनाओं के बावजूद हिंदुस्तान पूँजीवादी रास्ते की ओर ही बढ़ता रहा। गाँधी के अनुयायी कांग्रेसी अथवा अपने को समाजवादी जनवादी या राष्ट्रवादी कहलाने वाली पार्टियाँ भी पूँजीवादी रास्तों के दुष्परिणामों से देश को बचाने में सफल न हो सकी। इन सब हलचलों का प्रभाव सीधे आम जनता पर पड़ा और तत्कालीन कवियों ने इन हलचलों को अपनी कविताओं में पूर्णतः प्रतिफलित किया। मुनाफाखोरी, चोरबाज़ारी, तस्करी, अराजकता, भ्रष्टाचार, गरीबी, बेराजगारी आदि ने आज़ादी के बाद से आज तक अपना-अपना पिछला रिकार्ड खुद ही तोड़ा है। विधान मंडल, संसद और सरकारी प्रचारतंत्र के मुताबिक उत्पादन प्रति वर्ष अधिकाधिक होता जा रहा है। देश की गरीबी इन तंत्रों के अनुसार घटती जा रही है। फिर भी यहाँ की जनता भूखी है, असहाय है, लाचार है, अशक्त है, भयभीत है, अशिक्षित है और शोषित है। इन्हीं सर्वहारा वर्ग का

प्रतिनिधित्व समकालीन कविता करती है।
समकालीन हिंदी कविता और समाज-चेतना।

समकालीन हिंदी कविताओं में जिन समस्याओं को कवियों ने उठाया है और उसके समाधान का प्रयास समाजहित में किया है, उनका अवलोकन हम कुछ समकालीन कवियों के संदर्भ में कर सकते हैं। उन कवियों में नागार्जुन, मुक्तिबोध, भवानीप्रसाद मिश्र, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रामदरश मिश्र, जगदीश चतुर्वेदी, धूमिल, लीलाधर जगड़ी, भगवत रावत, चंद्रकांत देवताले, किशोर सिन्हा आदि की कविताओं को मैंने अपनी आलोचना का विषय बनाया है।

‘नागार्जुन’ अपने समकालीनों में उन थोड़े से लोगों में हैं जिन्होंने देश की बहुसंख्यक विपन्न लोगों के साथ विपन्नता को अंगीकार किया है। साथ-साथ यह भी बता दिया है कि मुट्ठी-भर लोगों के साथ किसी भी तरह नहीं रहा जा सकता और न उनके जीने के लिए कोई समझौता ही किया जा सकता है। इन मुट्ठीभर लोगों से हमें जीवन के सही अर्थ नहीं मिल पाते। इन लोगों के द्वारा जीवन-मूल्य की स्थापना तो बहुत दूर की बात है, जिन जीवन मूल्यों के लिए सर्वसाधारण अब तक संघर्षरत रहा है। शोभाकांत लिखते हैं-‘बाबूजी ने साफ-साफ देखा है कि गरीब जनता चाहे गाँवों की रही हो या शहरों की, राजनीतिक दलों ने उसे संगठन की रीढ़ नहीं बनाया। ऐसी भूखी, नंगी, दीन-हीन, पीड़ित, शोषित और असहाय जनता की राजनीतिक दल वालों ने जमकर उपयोग किया और उसे सड़क पर छोड़कर खुद खूबसूरत छायादार लॉन में जा बैठे। बाबूजी ऐसी ही जनता से जुड़कर और साथ चना-चबेना खाकर उनके लिए साहित्य को अपना एकमात्र लक्ष्य बनाया है- कवि हूँ पीछे/पहले तो मानव ही हूँ अतिमानव या लोकोत्तर किसको कहते हैं-/नहीं जानता/कैसे जानू/सुख-सुविधा में हुलस-हुलसकर/दुःख-दुविधा में झुलस-झुलसकर/सब जैसे अपने जीवन को बिता रहे हैं/वैसे मैं भी अपना बीता रहा हूँ। (नागार्जुन, मेरे बाबूजी, पृ. 143)

‘पुरानी जूतियों का कोरस’ में संग्रहित कविता ‘अन्नपचीसी’ में नागार्जुन ने असमय और भूखे लोगों की स्थितियों का चित्रण किया है, जहाँ गोदाम अनाज से भरे हैं पर लोगों के पेट में अनाज नहीं-‘गोदामों में अन्न कैद है, पेट-पेट है खाली/भूख पिशाचित बजा रही है, द्वार-द्वार पर थाली।’ (पृ. 44)

सामाजिक और राजनीतिक हलचलों को अपनी कविताओं में बखूबी चित्रण करने वाले कवि नागार्जुन व्यापारी, हाकिम, नेता सबके चरित्र को तो पहचानते ही हैं साथ ही यह भी

जानते हैं कि एक तरफ शहर की साँठ-गाँठ मखमल के साथ है, तो दूसरी तरफ रामराज की दावा करने वालों के राज में रावण का नंगा नाच भी जारी है, सिर्फ ठुमके बदल गये हैं-खादी ने मलमल से अपनी साँठ-गाँठ कर डाली है/बिड़ला-टाटा-डालमिया की तीसों दिन दिवाली है।/रामराज में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है/सूरत-शकल वही है भैया बदल ढाँचा है। (इस गुब्बारे की छाया में, पृ. 62-63)

आज़ादी के बाद प्रति वर्ष हमारे यहाँ 26 जनवरी और 15 अगस्त का राष्ट्रीय उत्सव मनाने की परंपरा रही है, लेकिन कही न कहीं आम जनता यह सोचने पर मजबूर हो जाती है कि क्या वे वास्तव में आज़ाद हैं। यह आज़ादी वास्तव में किसे मिली है? जनता की इन भावनाओं को कवि नागार्जुन ने अपनी कविता ‘26 जनवरी और 15 अगस्त’ में व्यक्त किया है-किसकी है जनवरी किसका अगस्त है?/कौन यहाँ सुखी है, कौन यहाँ मस्त है?/सेठ है, शोषक है, नामी गला काटू है/गालियाँ भी सुनता है, भारी थूक-चाटू है/चोर है, डाकू है, झूठा-मक्कार है/कातिल है, छलिया है, लुच्चा लबार है/जैसे भी टिकट मिला/जहाँ भी टिकट मिला/शासन के घोड़े पर वो ही सवार है/उसी की जनवरी छब्वीस/उसी का पन्द्राह अगस्त है/बाकी सब दुखी है बाकी सब पस्त है.....। (तुमने कहा था, पृ. 80)

समकालीन कवियों में सर्वाधिक चर्चित तथा विशिष्ट स्थान रखने वाले कवि हैं-मुक्तिबोध। इनके चिंतन पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव है। समसामयिक बोध में इन्होंने जनवादी उत्तरदायित्व को निभाया है। मुक्तिबोध पूँजीवादी लोलुपता, अन्याय, शोषण के घोर विरोधी है। उनके अनुभव उनके अपने रहे हैं, जिसकी टीस को वे निरंतर महसूस करते रहे हैं। उनकी कविता में आम आदमी की पीड़ा होने के कारण उनका सामाजिक सरोकार स्पष्ट हो जाता है। इसलिए ‘सकालीन व्यवस्था और राजनीति का ऐसा सीधा, जीवंत, उत्तेजक साक्षात्कार हमें मुक्तिबोध की कविता में ही मिल सकता है। वे अपने जीवन के भोगे अभावों को जैसे का तैसा अभिव्यक्त करते हैं। ‘कविता का समकालीन (पृ.63)। शमशेर के अनुसार- ‘मुक्तिबोध का कैनवास बड़ा है। वे यथार्थ को पूरी समग्रता में पकड़ते हैं। उनमें जो ‘फोर्स’ है उसकी जड़े अनेक अनुभवों और विचारों की गहराई में ढूँढ़ी जा सकती हैं। वे अपनी कविता में यथार्थ की एक ठोस वस्तुस्थिति पर दूसरी ठोस वस्तुस्थिति को जमाते चलते हैं-चट्टान पर चट्टान की तरह।’ (नागार्जुन : एक लंबी जिरह, पृ. 157)।

नागार्जुन की कविता वस्तुतः सामाजिक हलचल के बीच से गुज़रती है, इसलिए वे व्यक्ति के दुःख, उसकी पीड़ा को

अपना लेने के लिए तत्पर दिखाई पड़ते हैं-मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में/महाकाव्य पीड़ा है/पलभर में/सब में से गुज़रना चाहता है/प्रत्येक डर में से तिर आना चाहता हूँ

इस तरह खुद ही को दिये न दिये फिरता हूँ। (चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ. 73) कुंठा, तनाव, पीड़ा, व्यथा आदि की अभिव्यक्ति सभी कवियों ने की है, पर मुक्तिबोध की आवाज़ अन्य कवियों से भिन्न है। वे अपनी प्रेरणा की अलगाव को रेखांकित करने के प्रति सचेत नज़र आते हैं-‘मैं तुम लोगों से इतना दूर हूँ/तुम्हारी प्रेरणाओं से मेरी प्रेरणा इतनी भिन्न है/कि जो तुम्हारे लिए विष है, मेरे लिए अन्न है।’ (मैं दूर हूँ (एकत्र) पृ. 62)

मुक्तिबोध की पीड़ा आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार के संघर्षों का परिणाम है। व्यथा, पीड़ा, यातना, वेदना, दुख, कष्ट तथा तनाव, इनकी मुक्तिबोध की कविता से अलग उनकी रचना का अध्ययन संभव नहीं।

भवानी प्रसाद मिश्र ‘दूसरा सप्तक’ के कवि हैं। इनकी कविताओं में किसान, मजदूर, समाज के बीच की अमीरी-गरीबी भी व्यक्त हुई है। कवि की हृदय में एक ओर जहाँ आस्था, उत्साह, साहस तथा विश्वास का भाव है, वहीं वह निराशा, हताशा, पराजय, अनास्था तथा अकेलेपन का भी सामना कर रहा है। अपने समय की विकट परिस्थितियों से कवि आहत होता है। मोहभंग की स्थिति से गुज़रने के बावजूद कवि परिवर्तन के प्रति आश्वस्त है। वह निर्माण से परिवर्तन चाहता है। मिश्रजी चाहते हैं कि सभी भारत के नवनिर्माण में जुट जायें, जिससे नये भारत का निर्माण संभव हो सके। हमें सड़ी-गली मान्यताओं, मूल्यों को त्याग नये वातावरण की सृष्टि करनी होगी-वे अपने पैरों पर आप खड़े रहे/तो पूँजी के चेहरे का रंग उड़ जायेगा/भारत में अनोखा एक मेला जुड़ जायेगा। (गांधी पंचशती, पृ. 154)

यह अनोखा मेला ही समता की मेला होगी, जो कवि की अंतश्चेतना में विराजमान है।

मिश्रजी की कविता में तत्कालीन युग उभरता है। उनकी कविताओं में कृषकों तथा मजदूरों के जटिल जीवन तथा उनकी समस्यायें उभरकर आती हैं-गाँव इसमें झोपड़ी है घर नहीं है/झोपड़ी के फटकियाँ हैं दर नहीं हैं/धूल उड़ती है धुएँ से दम घुटा है/मानवों के हाथ में मानव लुटा है/सो रहे हैं शिशु, माँ चक्की लिए हैं/पेट पापी के लिए पक्का किये है/फट रही छाती। (गाँधी पंचशती, पृ. 24)

कर्मठता और ईमानदारी मिश्र जी की कविता की शक्ति है। वे अपनी विचारधारा व्यक्ति तथा उसकी शक्ति के प्रति समर्पित करते हैं।

विजय देवनारायण साही ‘तीसरा सप्तक’ के समकालीन कवि हैं। उनकी कविताओं में दुख-दर्द, करुणा, कुंठा और निराशा के भावों की खुलकर अभिव्यक्ति हुई है। कविता में उनके निराकरण का भी प्रयास कवि ने किया है साही को परिवेश की सही पहचान है। आम आदमी की ज़िंदगी को उन्होंने उसके यथार्थ के साथ अभिव्यक्त किया है समकालीन प्रश्नों, उनके तनावों और चिंताओं को व्यक्त किया है-अकेलापन/वह अनावश्यक रोशनी/जो अब भी तुम्हारे शयनकक्ष में जलती है/न पास फेंके जा सकते हैं/न पैमाने लवरेज किए जा सकते हैं/न शकल पहचानी जा सकती है/जो खिड़की से निकलकर/बाहर के लोगों को सिर्फ इतना-सा आभास देती है/कि शायद इस मकान में/लोग अब भी रहे हैं (कविता का समकालीन, पृ. 109)

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना एक ऐसे समकालीन कवि है जिन्होंने कविता को जर्जरित प्रमिमानों, रूढ़ियों एवं मूल्यों से मुक्त कराया तथा आज के परिवेश में जीवन की वास्तविकता और यथार्थ की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। सन् 1969 में प्रकाशित ‘गर्म हवाएँ’ काव्य-संग्रह, आज की भ्रष्ट राजनीति, समाज, देश, संसद, लोकतंत्र, वर्ग भेद और विसंगति पूर्ण जीवन के मुखौटे उतारती है। ‘खूंटियों पर टंगे लोग’ नामक कविता संग्रह की अधिकतर कविताएँ 1976-1981 के बीच रची गई है। इन कविताओं में तेजी से बदलते समय के साथ-साथ चलने के लिए कवि जनता को प्रेरित करता है, आगे बढ़ने के लिए वे विचार और घटनाएँ ही पर्याप्त हैं, जिनसे व्यक्ति का हृदय छलनी हुआ है और समाज के जुल्मों और अत्याचारों को वह सहता है। अपने साथी की खून से रंगी कमीज ही भूखे आदमी के लिए झंडा बन जाती है, जिसे फहराता हुआ वह आगे दौड़ सकता है। कवि जानता है कि अकेले आदमी के दौड़ने से कुछ नहीं होगा। अकेला आदमी परिवेश और व्यवस्था को नहीं बदल सकता। कवि मानवतावादी होने के कारण समाज के प्रति सचेत हो इसलिए वह कहता है- सब एक साथ मिलकर/दौड़ो/नहीं तो मालगाड़ी राजधानी पहुँच जाएगी/और लौटने पर तुम्हें अपनी झोपड़ियों में/बच्चों और बूढ़ों की लाशें ही मिलेगी। (आहिस्ते मत चलो, खूंटियों पर टंगे लोग, पृ. 40)

समकालीन कवियों में धूमिल एक सशक्त कवि है। उनकी कविताओं में समकालीन परिवेश अपनी पूरी वास्तविकता के साथ प्रतिबिंबित हुआ है। उनकी कविताओं में आज की भ्रष्ट राजनीति, कवि का दायित्व, आस्था-निराशा, न्याय-अन्याय, मानवीयता-अमानवीयता, ईमानदार-बेईमान, सभ्यता-असभ्यता, शहर और गाँव, नारी-पुरुष सभी का चित्रण हुआ है।

समकालीन भ्रष्ट राजनीति का धूमिल ने अपनी कविता में खुलकर चित्रण किया है। राजनीति की पूरी समझ इन्हें जितनी थी उतनी अन्य विषय की नहीं। राजनीतिक विडम्बनाएँ उनकी कविताओं में व्यक्त हुई हैं। वे भली-भाँति जानते हैं कि कुर्सियाँ वही हैं, उसके प्रति लोगों की चाह वही है सिर्फ उस पर बैठने वाले बदल रहे हैं। इसीलिए तो वे 'संसद के सड़क तक' में कहते हैं- 'हाँ, यह सही कि कुर्सियाँ वही हैं। सिर्फ टोपियाँ बदल गयी है।'

धूमिल की कविताओं में समाज चेतना पूर्ण रूप से प्रतिफलित हुआ है। वे व्यवस्था को बदलने के पक्ष में हैं। वे एक ऐसी व्यवस्था के समर्थक हैं जहाँ कोई बच्चा भूखा स्कूल न जाये, जहाँ रोटी और आवास की समस्या न हो, सभी के पास खाने-पीने और रहने के साधन उपलब्ध हैं-अब कोई बच्चा/भूखा रहकर स्कूल नहीं जायेगा/अब कोई छत बारिश में/ नहीं टपकेगी/अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में/अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा/अब कोई दवा के अभाव में/घुट-घुटकर नहीं मरेगा। (संसद से सड़क तक, पृ. 100)

'मोचीराम' नामक कविता में धूमिल ने चरित्र की सरलता, स्पष्टता और साहस को उभारा है। कविता मानव स्थिति की व्याख्या करती है। कविता का फलक छोटा है, पर कसा हुआ। कविता का मोची अपनी शोषित अपमानित श्रेणी की ओर से उच्च वर्ग को, उसी के आईने में मुख दिखाता है, जिससे उच्च वर्ग अपने असली चेहरे को देख ले। मोचीराम का एकालाप समाज में व्याप्त अंतर्विरोधों पर गहरी चोट करता है। उसके पास जूते की मरमत के लिए आये तरह-तरह के व्यक्ति एक जोड़ी जूते ही हैं-हर आदमी एक जोड़ी जूता है/जो मेरे सामने/मरम्मत के लिए खड़ा है और जूते/और पेशे के बीच/कहीं न कहीं एक अदद आदमी है। (मोचीराम, पृ. 219-131)

'धूमिल' की कविताओं में समाज-सचेतनता की सफल अभिव्यक्ति पूर्णता हुई है। भगवत रावत की कविता 'सुनो हिरामन' विधिवत् युगीन संदर्भों के तनाव में आर्थिक और राजनीतिक तिकड़मों की गहरी चिंता में और हिरामन के बदले असली हिरामन खोजने की आकुलता में लिखी गई है। भगवत रावत की तनी हुई दृष्टि के सीधे निशाने पर सबसे पहले शातिर राजनेता और चालाक खोपड़ी के बौद्धिक लोग हैं, क्योंकि सीधे सज्जन लाखों हिरामनों के मामूली अस्तित्व के साथ सर्वाधिक स्वार्थपूर्ण खिलवाड़ इन्हीं लोगों ने किया है। इनकी गुप्त वास्तविकता को खोलकर कवि ने रख दिया है-सब तरफ भेस बदलकर/फैल गये हैं सौदागर/कोई ताज्जुब नहीं/खुद को ही हिरामन बताये/कोई सौदागर। (वागर्थ, पृ.

93, अंक 156 जुलाई 2008)

समकालीनता से रूबरू कराने वाली चंद्रकांता देवताले की कविता 'थोड़े से बच्चे और बाकी बच्चे' वर्ग विभाजित समाज के दोनों वर्गों (अभिजात्य और सर्वहारा) के बच्चों की जीवन स्थिति का दृश्य एक साथ प्रस्तुत कर कवि ने एक भयावह स्थिति को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है-थोड़े से बच्चों के लिए/एक बगीचा है/उनके पाँव दूब पर दौड़ रहे हैं/असंख्य बच्चों के लिए/कीचड़-धूल और गंदगी से पटी/गालियाँ हैं जिनमें वे/अपना भविष्य बीन रहे हैं। (वागर्थ, पृ. 42, जुलाई, 2008)

सन् साठ के बाद लिखित कविता हिंदी साहित्य में समकालीन कविता के नाम से जाने जानी लगी है। वास्तव में समकालीनता एक भावबोध है जो आधुनिकता और समाज सचेतनता को समेटे हुई है। भूमण्डलीकरण की चर्चा आज बहुत हो रही है। इसके नाम पर पूँजीवादी बाज़ार का प्रसार विश्व में किया जा रहा है, जो मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने दे रहा है। इसी के साथ-साथ हमारी सोच पर, व्यवहार पर, पाश्चात्य प्रभाव हावी होता जा रहा है। यह हमारी संस्कृति के लिए हानिकारक तो है ही, हमारी सर्जनात्मक विकास में भी बाधक है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. डॉ. गुरचरण सिंह, कविता का समकालीन, के. एच. पचौरी प्रकाशन, 2004
2. नागार्जन, तुमने कहा था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
3. नागार्जन, पुरानी जूतियों का कोरस, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
4. नागार्जन, इस गुब्बारे की छाया में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
5. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली,
6. रामपाल गंगवार, समकालीन प्रश्न और साहित्य चिंतन, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
7. विष्णु चंद्र शर्मा, नागार्जुन एक लंबी जिरह, वाणी प्रकाशन, 2001
8. शोभाकांत, नागार्जन : मेरे बाबूजी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1990
9. डॉ. स्मिता मिश्र, गीत फरोश संवेदना और शिल्प, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1995
10. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, खूंटियों पर टंगे लोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1984

असि. प्रो. हिंदी विभाग, नगाँव गर्ल्स कॉलेज, असम

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद साहित्य

दीपाली ग्वाला

प्रेमचंद समाज के चित्रकार थे। स्वाधीनतापूर्ण काल की सामाजिक दशा ने उन्हें चिंतनशील बनाया था। फलतः उन्होंने समाज की सभी प्रकार की समस्याओं पर विचार किया था और उसका ही प्रतिबिम्ब उनके साहित्य में उभर आया है। उनके साहित्य को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखने से उनकी सामाजिक धारणा का स्वरूप स्पष्ट होता है। भारत पर विदेशियों का शासन होने से अनेक विदेशी स्त्री-पुरुष भारतीय समाज में बसे हुए थे। प्रेमचंद का स्वाधीनतापूर्ण काल का समाज बेगार-प्रथा से पीड़ित था। प्रेमचंद-साहित्य का सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अवलोकन करने से यह बात प्रकाश में आती है कि प्रेमचंद ने अमानुष बेगार-प्रथा की निंदा की है। 'कायाकल्प' उपन्यास के सामाजिक विचार में बेगार-प्रथा अंकित है।

प्रेमचंद का कथा-साहित्य ग्रामीणों के रहन-सहन, आचार-विचार तथा रीति-रिवाजों से भरा पड़ा है। ग्रामीण जीवन का कोई भी ऐसा पहलू नहीं है, जिस पर प्रेमचंद ने अपनी कलम न चलाई हो। जहाँ उन्होंने ग्रामीणों के गुणों की ओर संकेत किया है, वहीं इनमें पाई जाने वाली रूढ़ियों, अंधविश्वासों तथा अज्ञान को भी उजागर किया है। प्रेमचंद की रचनाधर्मिता अत्यंत यथार्थ रूप में हमारे सामने आती है। एक ओर जहाँ उन्होंने शोषित-उत्पीड़ित मजदूर-किसानों के साथ अपनी संवेदना प्रकट की है, वहीं दूसरी ओर उनकी कमजोरियों को भी रेखांकित किया है। उनका पहला उपन्यास 'वरदान' यद्यपि मध्य-वर्गीय जीवन पर लिखा गया है लेकिन इसमें भी उन्होंने अंधविश्वासों के उन्मूलन का मार्ग निकाल लिया है। अपने इस उपन्यास में भी प्रेमचंद अपनी सामाजिक चिंता की भूमि तलाशते हुए नज़र आते हैं। मिथ्या-चेतना के प्रचार-प्रसार में प्रेमचंद ने ब्राह्मण-पुरोहितों का भी विशेष हाथ माना है। वे स्वर्ग और नरक का भय दिखाकर लोगों को अनेक अनुष्ठानों के लिए प्रेरित करते थे। आगे चलकर प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में भी ग्रामीणों के अंधविश्वासों का उल्लेख किया है। विवाह-संबंधी रूढ़ियों की तरफ भी प्रेमचंद ने संकेत

किया है। उन्होंने विवाह को प्रेम का आधार माना है। उसमें दया, सहानुभूति, उपकार तथा त्याग आदि देवोपम गुणों को महत्त्व दिया है। प्रेमचंद ने रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों का सबसे बड़ा कारण धार्मिक कर्मकाण्डों को माना है। उनके उपन्यासों में यह समस्या अत्यंत गंभीरता के साथ उठाई गयी है कि ग्रामीण जनता धर्म-संकट को सबसे बड़ा संकट मानती है। हिंदू-मुस्लिम साम्प्रदायिक एकता की आवश्यकता पर प्रेमचंद ने काफी टिप्पणियाँ लिखी है। प्रेमचंद के उपन्यासों में इस साम्प्रदायिक समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचंद ने दोनों सम्प्रदायों में आयी फूट की दरार को सद्भावना तथा भाईचारे के लेप से जोड़ने का प्रयास किया है। इन दोनों सम्प्रदायों में फूट की दरार को सद्भावना तथा भाईचारे के लेप से जोड़ने का प्रयास किया है। इन दोनों सम्प्रदायों में फूट डालने वाले अंग्रेजों के साथ-साथ उन्होंने उन लोगों को भी जिम्मेदार ठहराया है जो धर्मान्तरता की गहरी खाई में डूबे हुए थे।

प्रेमचंद राष्ट्रीय मुक्ति-आंदोलन के उस तूफानी दौर के लेखक हैं, जिस काव्य-क्षेत्र में छायावाद या स्वच्छन्दतावाद का दौर था। प्रेमचंद की सामाजिक चिंता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अथवा मूलभूत केंद्र भारत की शोषित-उत्पीड़ित जनता की, विशेषतः उस बहुसंख्यक जनता की, जो किसान और मजदूर के रूप में गाँवों में रहती है, उसी की वास्तविक मुक्ति रहा है। इस जनता के उद्धार-उपायों के लिए प्रेमचंद ने एक व्यापक अभियान अपने साहित्य और साहित्येतर लेखन के माध्यम से चलाया था।

प्रेमचंद ने जिन बुरे रिवाजों पर आघात किया था, उनमें से दहेज-प्रथा एक थी। यह प्रथा एक अन्याय कारक सामाजिक रिवाज है, जिसके पालन में लड़कियों के माँ-बाप की कमर टूट जाती है। लड़कियों के विवाह की चिंता से उनका तन-मन सूखता है और इस तीन हजार रुपये की रिश्वत लेने से जेल जाने की नौबत उन पर आती है, इस तरह 'निर्मला' उपन्यास

में दहेज की कुरीति का भण्डाभोड़ हुआ है।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद साहित्य वेश्याओं के जटिल प्रश्न को सामने रखता है। सुधारवादी प्रेमचंद ने समाज में वेश्याओं के प्रतिष्ठा को प्रदान करना चाहा था। सामाजिक जीवन में वेश्याओं को बदहाली से ऊपर उठाने के लिए प्रेमचंद वेश्या-प्रथा का निर्मूलन करना चाहते थे। 'सेवासदन' उपन्यास के बाबू बिठलदास इस दिशा में अपना योगदान देते हैं। प्रेमचंद ने हर समस्या की जड़ का इलाज करना चाहा था। जिस सामाजिक व्यावस्था से अभागिनों का जीवन बर्बाद होता है और जिसमें अत्याचार पनपते हैं और बढ़ते हैं, उस दूषित समाज-व्यवस्था को मिटाने के विचार से उन्होंने वेश्या संबंधी रचनाओं के रूप में असल दोषी समाज व्यवस्था पर कोड़े की मार लगाई है।

प्रेमचंद काल में संयुक्त परिवार खंडित हो रहे थे। 'प्रेमाश्रम' और 'मंगल सूत्र' में चित्रित संयुक्त परिवार जायदाद को लेकर हुए झगड़े में तितर-बितर होते हैं। भाई-भाई और बाप-बेटे में संघर्ष होने से परिवारों का सामाजिक स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। 'अलग्गोझा' कहानी का संयुक्त परिवार ठीक तरह से अपना गुज़ारा नहीं कर सकता है।

प्रेमचंद साहित्य जिस काल की देन है, उस काल में हिंदू-मुस्लिम झगड़े हो रहे थे। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद साहित्य में इन दो जातियों में होने वाली दुश्मनी दीख पड़ती है। हिंदुओं की संख्या अधिक होने से मुसलमानों की ओर उन्हें प्रेम और सहानुभूति की दृष्टि से देखना चाहिए, यह प्रेमचंद का मानवतावादी विचार था। उन्होंने 'कायाकल्प' उपन्यास में अंग्रेज़ी सल्लनत में सामाजिक जीवन में हिंदुओं और मुसलमानों के धारदार बने जातीय वैमनस्य का चित्र चित्रित किया है।

भारतीय समाज में अस्पृश्यता की जड़ इतनी पुरानी है कि वह प्रेमचंद काल में जड़ कर रही थी। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद साहित्य इस बात पर प्रकाश डालता है। 'रंगभूमि', कायाकल्प, कर्मभूमि और गोदान उपन्यासों तथा ठाकुर का कुआँ, घासवाली, सद्गति, मन्दिर, कफन आदि कहानियों में दलितों के बहिष्कृत जीवन की झाँकियाँ समाई हैं।

सहायक ग्रंथ-

1. प्रेमचंद रचनावली
2. कर्मभूमि उपन्यास में देश और समाज

ग्राम-पोस्ट चंदखिटा, जिला- कटीमगंज, असम

वाङ्मय प्रकाशन की पुस्तक सूची



मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में

विभाजित भारत में मुसलमानों की दशा और उनके संघर्ष का उल्लेख मुस्लिम उपन्यासकारों ने बड़ी बेबाकी से किया है। जिसमें राही मासूम रज़ा का आधा गाँव, शानी का काला जल, अब्दुल बिस्मिल्लाह का झीनी-झीनी बीनी चदरियाँ, नासिरा शर्मा का ज़िंदा मुहावरे, मंजूर एहतेशाम का सूखा बरगद, बदीउज्जमाँ का छाको की वापसी उपन्यास विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इनके द्वारा भारतीय समाज के आधुनिक युग के मुस्लिम मन को आसानी से समझा जा सकता है। मूल्य 295/-

स्वामी विवेकानंद की विचारधारा और निराला का गद्य

डॉ. रामाधार प्रजापति

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का स्वामी विवेकानंद की ओर झुकाव स्वामी प्रेमानंद जी के दर्शन एवं उनके आदर्शों के परिचय से प्रारंभ होता है। जीवन और समाज के दुःखों से दग्ध निराला का हृदय स्वामी प्रेमानंद जी की छवि के दर्शन, उनके व्यवहार और वचन से इतना मुग्ध हुआ कि उन्हें जान पड़ने लगा कि जीवन का जो कुछ भी सुख और शांति इस धरती पर है, वह उन्हीं संन्यासियों में है जितना बड़ा ये हैं, दूसरा कोई नहीं। पारिवारिक संस्कार के रूप में प्राप्त महावीर के प्रति जितनी आस्था उनके हृदय में थी, पत्नी मनोहरादेवी के मरणोपरान्त अपने प्रेम पर जो विश्वास उन्हें महसूस हुआ वहीं आस्था और विश्वास उन्हें (निराला को) उन संन्यासियों में भी दिखाई पड़ी। निराला ने वहीं पर स्वामी जी को अपने प्रिय निधि श्रीरामचरित मानस का पाठ पढ़कर सुनाया और मुग्ध भी किया था। तभी से निराला का मन भगवान श्रीरामकृष्ण और विवेकानंद जी के प्रति इतना आकृष्ट हुआ कि बंगाल में रहते हुए निराला को आस-पास जो कुछ भी सामग्री मिलती उन्हें पढ़ते और उनके तह तक जाने का प्रयास करते रहे। रामकृष्ण परमहंस पर दार्शनिक लेख लिखने के कारण ही उन्हें समन्वय के संपादन विभाग में नौकरी मिल गई। महिषादल की राजदरबार की नौकरी छोड़कर संन्यासियों के साथ रहते हुए उक्त दार्शनिक पत्रिका में कार्य किया। अनेक लेख लिखे वहीं रहते हुए स्वामी विवेकानंद जी द्वारा स्थापित बैलुड मठ से प्रकाशित भगवान श्रीरामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानंद जी के व्यवहारिक अद्वैतवाद ने निराला की आत्मा पर गहरा प्रभाव डाला। बचपन से ही उनके हृदय में जो भावना किसी न किसी रूप से विद्यमान थी वह स्वामी जी के विचारों से पुष्ट हुई और निराला के जीवन एवं साहित्य को आलोकित कर दिया जिससे हिंदी साहित्य के अध्ययन कर्ताओं को एक नई दृष्टि और ऊर्जा मिली।

निराला के भारतीय समाज में खुद अपना जीवन जीया और भोगा, दूसरों को भी भोगते हुए देखा। त्रस्त हृदय से दुःख

दर्द को महसूस किया। तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त समस्याओं जाति-पाति का भेदभाव, ब्राह्मणवाद, छुआछूत, शिक्षा का अभाव, हिंदू-मुस्लिम भेदभाव किसानों मजदूरों पर हो रहे तरह-तरह के अत्याचार, अन्याय, उत्पीड़न, नारी शिक्षा, नारी मुक्ति, बाल विवाह, विधवा समस्या आदि के साथ-साथ समाज में व्याप्त व्याभिचार, शोषण, कुसंस्कार, रूढ़ियों, अंधविश्वास इत्यादि सभी क्षेत्रों में निराला ने सुधार की आवश्यकता को बहुत ही गहनता से अनुभव किया। उन्होंने अपने व्यवहार एवं साहित्य के द्वारा इनका खुलासा किया, समाज से उन्हें निर्मूल करने के लिए विद्रोहात्मक रूख भी अपनाया। विवेकानंद की तरह निराला भी किसी प्रकार के सामाजिक बंधन को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। सभी प्रकार के बंधनों से समाज को मुक्त कर सर्वधर्म, सर्ववर्ग समन्वय, प्रेम और सहृदयता की भावना की स्थापना करना ही उनका प्रधान उद्देश्य था। निराला ने राष्ट्रीय समस्याओं से मुक्ति के लिए किसानों, मजदूरों तथा हिंदुओं और मुस्लिमों की एकता और संगठन की आवश्यकता को पहचाना, उसके लिए कार्य किया और दूसरों को भी आह्वान किया। उनके प्रायः सभी उपन्यासों और कहानियों में ऐसे अनेक पात्र हैं जो संगठन का कार्य करते हैं। उनका समस्त गद्य साहित्य समाज के लालित, प्रताड़ित, उत्पीड़ित और अवहेलित पात्रों पर आधारित है। निराला उनके साथ पूर्ण आत्मीयता और संवेदना तथा सहयोग की भावना में दिखाई पड़ते हैं। अनेक स्थानों पर वे एक महत्त्वपूर्ण पात्र के रूप में ही चित्रित हुए हैं। इसी भावनाओं के कारण तरुण कुमार ने स्वामी विवेकानंद जी को निराला का बौद्धिक और आध्यात्मिक गुरु भी माना है। निराला मनुष्यों को मनुष्य रूप में ही देखते थे। उनका मानवतावाद स्वामीजी की विश्वमानवता की भावना पर आधारित है।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के गद्य साहित्य और विवेकानंद साहित्य के सम्यक् अध्ययन से यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि दोनों मनीषियों के विचारधाराओं में बहुत समानता है।

कतिपय उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि निराला के मुँह से स्वामी विवेकानंद ही बोल रहे हैं। निराला की दृष्टि में भारत के समग्र उत्थान में विवेकानंद के व्यक्तित्व का योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। निराला ने लिखा है “भारत के उत्थान में जितना हाथ विवेकानंद का है, उतना और किसी दूसरे का नहीं। स्वामीजी केवल ज्ञान थे। उन्होंने सूक्ष्म रूप से देश की मुक्ति के लिए सब कुछ कहा है। वे जाति भेद के प्रबल विरोधी थे। कारण वे जानते थे, गुलामों की कोई जाति नहीं हो सकती। उन्होंने शिल्प, धर्म, विज्ञान सभी राहों में मुक्ति की प्राप्ति बतलायी है। इस तरह देश को सभी कर्मों में प्रोत्साहित किया है।”¹ विवेकानंद के व्यावहारिक अद्वैतवाद के क्षेत्र में प्रतिपादित सामाजिक क्रांतिकारी विचारों “भारत में दो बुरी बातें हैं। स्त्रियों का तिरस्कार और गरीबों को जाति भेद के द्वारा पीसा जाना।”² निराला के सामाजिक चिंतन के केंद्र में स्थिति मालूम पड़ते हैं। उनके अधिकतम उपन्यास और कहानियों में ये दोनों समस्याएँ उभारी गई हैं। निराला उक्त समस्याओं का पूर्ण चित्रण करते हुए उनके कारणों के तह तक पहुँचते हैं और विवेकानंद के उच्च वैदान्तिक ज्ञान से शक्ति संचय कर उन समस्याओं को समाज से निर्मूल करने का विद्रोहात्मक प्रयास भी करते हैं। खुद कार्य करते हुए दूसरों को भी संचेष्ट करते हैं।

भारतवर्ष की पराधीनता के बंधन से मुक्त करने के लिए निराला विवेकानंद दोनों ने यह अनुभव किया था कि भारतवर्ष के सभी स्तर के मनुष्यों का संगठित होना आवश्यक है, जिसके लिए सामाजिक भेदाभेद को मिटाना, प्रथम आवश्यक कार्य था। भारतवासियों की सामाजिक स्थिति का ज्ञान कराते हुए ‘वर्तमान भारत’ नामक एक निबंध में स्वामी विवेकानंद का कहना है कि इस देश का हाल का क्या कहा जाये? शूद्रों की बात को अलग रही, भारत का ब्राह्मणत्व अभी गोरे अध्यापकों में और उसका क्षत्रियत्व चक्रवर्ती अंग्रेजों में। उसका वैष्णवत्व भी अंग्रेजों की नस-नस में है। भारतीयों के लिए केवल भारवाही पशुत्व अर्थात् शूद्रत्व ही रह गया।...जब सारे देश में शूद्रत्व शूद्रों के विषय में अलग से क्या कहा जाये।³ इससे मिलता जुलता विचार निराला के यहाँ भी मिलता है उनका कहना है, “अब यवन और गौरांगों के 800 वर्षों के शासन के बाद भी हिंदुस्तान में जो लोग ऐसा कहते हैं, वे झूठ तो बोलते ही हैं, ब्राह्मण और क्षत्रिय का अर्थ भी नहीं समझते। इस समय भारत में न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय, न वैश्य, न अपने ढंग की शिक्षा है, न अपने हाथ में राज्य प्रबंध, न अपना स्वाधीन व्यवसाय। कोई राष्ट्र तब तक

स्वाधीन नहीं हो सकता, जब तक उसके ये तीनों वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जग न गये हों। उसकी मेघा पुष्ट, शासन स्वाधीन सुदृढ़ और वाणिज्य-स्वायत्त तथा प्रबल न हों। गुलाम के मानी गुलाम, बाहरी और भीतरी परिस्थितियों का दास।”⁴

धर्म की रूढ़ियों में बंधी भारतीय समाज को मुक्त करने के लिए निराला का कहना है-“रूढ़ियाँ कभी धर्म नहीं होती, ये एक-एक समय की बनी हुई सामाजिक शृंखलाएं हैं। वे पहले की सामाजिक शृंखलाएं जिनमें समाज में सुधारपन था, मर्यादा थी-अब जंजीरें हो गयी हैं। अब उनकी बिल्कुल आवश्यकता नहीं अब उन्हें तोड़कर फेंक देना चाहिए।”⁵ निराला के अनुसार जड़ संस्कारों से बुद्धि का नाश होता है। प्रगति के रास्ते पर बढ़ने वाले पैरों को वे जकड़ लेते हैं। निरूपमा नामक उपन्यास की नायिका निरूपमा की उक्त परिस्थिति का चित्रण करते हुए निराला ने लिखा है, “निरूपमा को हिंदू संस्कारों ने जैसे जकड़ लिया। ज्यों की त्यों खड़ी रह गयी।”⁶ किसी प्रकार उन्होंने अपने प्रायः सभी उपन्यासों और कहानियों में ऐसे रूढ़ियों और संस्कारों का चित्रण कर उन्हें समाज से उखाड़ फेंकने का आह्वान किया है।

धार्मिक कुसंस्कार पर व्यंग्य करते हुए निराला के आध्यात्मिक गुरु स्वामी विवेकानंद का कहना है “जिस देश में करोड़ों मनुष्य महुआ खाकर दिन गुज़ारते हैं और दस बीस लाख साधु और दस-बारह करोड़ ब्राह्मण उन गरीबों का खून चूसकर पीते हैं और उनकी उन्नति के लिए कोई चेष्टा नहीं करते, क्या वह देश है या नरक? क्या यह धर्म है या पिशाच का नृत्य।”⁷

पुरानी परिपाटी में बंधी समाज को तत्कालीन परिवेश और परिस्थिति के लिए मृत घोषित करते हुए हमारे समाज का भविष्य रूप, नामक 1931 की सुधा की एक टिप्पणी में निराला ने लिखा है “हमारा समाज इस समय मृत है दूसरा समाज इसके पीछे तैयार भी हो रहा है। यह सिर्फ इसलिए कि इससे प्राचीन अधिकारियों, ब्राह्मणों, क्षत्रियों के अधिकार पूर्ववत् नहीं रह जाते और वे अपनी फायदा की दुराकांक्षा अब तक किए हुए हैं। यद्यपि इस ओतप्रोत शूद्रत्व में उनके भी सब अंग डूबे हुए हैं।”⁸ शायद इसीलिए निराला ने समाज में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता पर बल देते हुए लिखा है, “समाज वही जीवित है, जो आवश्यकतानुसार अपना रूप बदल सकता है, न कि वह जो कुछ पुरानी लकीरों का फकीर हो। भारत के आदिम निवासी हिंदुओं के लिए बहुत बड़ी आवश्यकता आ पड़ी है कि अपने समाज का कुछ सुधार ही नहीं, किंतु आमूल परिवर्तन करें।”⁹

निराला से पहले उच्च वर्ण वालों को सावधान करने वालों में स्वामी विवेकानंद का कहना है जिन्हें सचल शमशान कहकर तुम्हारे पूर्व पुरुषों ने घृणा की है, भारत में जो कुछ वर्तमान जीवन है, वह उन्हीं में है और सचल शमशान हो तुम लोग। तुम्हारे घर-द्वार म्यूजियम है... इस माया संसार की असली प्रहेलिका, असली मरूमरीचिका तुम लोग हो भारत के उच्च वर्ण वाले। भूत-भारत शरीर के रक्त मांस, हीन कंकालयुक्त, तुम लोग क्यों नहीं जल्दी से जल्दी धूल में परिणत हो वायु में मिल जाते? तुम्हारी दुर्गन्धित शरीरों को भेंटती हुई पूर्वकाल की बहुत सी रत्न पेटिकाएँ सुरक्षित हैं। ...अब अंग्रेजी राज्य में, अबाध विद्याचर्या के दिनों में तुम लोग शून्य में विलीन हो जाओ और फिर एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़ कर, किसानों की कुटी भेद कर, जाली, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ के पास से, कारखाने से, हाट से, बाज़ार से, निकले झाड़ियों जंगलों, पहाड़ों पर्वतों से। इन लोगों ने सहस्र-सहस्र वर्षों तक नीरव अत्याचार सहन किया है उससे पायी है अपूर्व सहिष्णुता। सनातन दुःख उठाया, जिससे पायी है अटल जीवनी शक्ति। अतीत के कंकाल समूह। यहीं है तुम्हारे सामने तुम्हारे उत्तराधिकारी भावी भारत।”¹⁰

निराला शूद्रों के उत्थान से भारत के भविष्य को जोड़ते हुए कहते हैं, “शूद्र भी क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बन सकते हैं। शूद्रों के इसी अधिकार पर भारत का भविष्य जातीय संगठन अवलम्बित है। अधिकार के बिना जीवन की भी कोई व्याख्या नहीं हो सकती।”¹¹ हिंदुओं का जातीय संगठन नामक अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में निराला का कहना है, “अब सब जातियाँ सम्मान तथा मर्यादा में बराबर हैं। जो सदियों से सेवा करती आ रही हैं उन्हीं जातियों में यथार्थ मनोबल है। जब तक उनका उत्थान न होगा, भारत का उत्थान नहीं हो सकता।...उच्च वर्ण वालों का ह्यस अब स्पष्ट दिखाई पड़ता है। अच्छे-अच्छे आदमी बहुत दिनों से उनके कान में यह आवाज़ उठा रहे हैं कि यदि बचे रहना चाहते हो, तो अछूतों के प्रति घृणा का भाव छोड़कर उन्हें अपनाओं उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध करो उनके सामाजिक अधिकारों को बढ़ाते रहो।”¹²

कुल्लीभाट, चतुरी चमार, देवी आदि निराला की रचनाएँ संस्मरणात्मक शैली में लिखी गई हैं। जहाँ निराला भी एक महत्त्वपूर्ण पात्र के रूप में उभर कर आये हैं। अपने रचनाओं में निराला समाज में अछूत माने जाने वाले घृणित, उपेक्षित, अवहेलित आदि मनुष्यों के प्रति अत्यंत संवेदना और आत्मीयता दिखलाते हुए नज़र आते हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा के साथ-साथ

समाज में उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त कराने का अथक प्रयास करते हैं।

निराला के नारी संबंधी विचार भी स्वामी जी के विचारों से प्रभावित हैं। निराला ने शूद्रों की तरह ही नारी शिक्षा एवं नारी मुक्ति के संबंध में बहुत कुछ कहा है। बाल विवाह, विधवा समस्या, नारी शिक्षा आदि समस्याएँ दोनों मनीषियों के विचार के केंद्र में हैं। इन दोनों मनीषियों ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था के विकास और विस्तार पर जोर दिया है। निराला ने तो कहीं-कहीं स्वामी जी के विचारों से भी आगे जाने का प्रयास किया है। निराला साहित्य के अध्येता डॉ. रामविलास शर्मा एवं निराला रचनावली के सम्पादक नंदकिशोर नवलजी ने भी निराला के साहित्य पर स्वामी विवेकानंद जी के प्रभाव को स्वीकार किया है। डॉ. तरुण कुमार ने तो निराला की विचारधारा और विवेकानंद नामक एक शोध प्रबंध ही प्रकाशित करा दिया है।

जिसमें आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि तमाम विचारधाराओं का उद्धरण पुष्ट व्याख्या प्रस्तुत किया है।

संदर्भ

1. निराला रचनावली, खण्ड-6, (सं.) नंदकिशोर नवल चतुर्थ संस्करण 2006, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. पृ. 154
2. विवेकानंद, विवेकानंद साहित्य खण्ड-4, संस्करण 2006, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, पृ. 323
3. वही, खण्ड-9, संस्करण, 2007, पृ. 219
4. निराला रचनावली, खण्ड-6, पृ. 124
5. वही, पृ. 131
6. वही, खण्ड-3, पृ. 384
7. विवेकानंद साहित्य, खण्ड-2, पृ. 337
8. निराला रचनावली, खण्ड-6, पृ. 362
9. वही, पृ. 317
10. विवेकानंद साहित्य, खण्ड-8, संस्करण 2007, पृ. 167-68
11. निराला रचनावली, खण्ड-6, पृ. 437
12. वही, पृ. 387-8

**विद्यानगर चायबागान, पो. विद्यानगर, जिला- करीमगंज,
असम-788734**

शिवमूर्ति की कहानियों में चित्रित स्त्री-जीवन

पूनम मौर्या

हिन्दी कथा साहित्य में शिवमूर्ति एक अलग तरह के रचनाकार है, इन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री जीवन के तमाम संदर्भों को बड़े शिद्दत से अभिव्यक्त किया है। सच तो यह है कि इनके कहानियों के केन्द्र में स्त्रियाँ ही हैं और अधिकांश कहानियों की नायिकाएं भी स्त्रियाँ ही हैं। शिवमूर्ति का एक कहानी-संग्रह केसर कस्तूरी है। इसमें छः कहानियाँ संग्रहित हैं। ये कहानियाँ सामाजिक संदर्भों के साथ स्त्री जीवन के चुनौतियों, सामाजिक सत्ता का दबाव और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के वर्चस्व को प्रत्यक्ष करते हैं। इनके भीतर स्त्री की बहुत ही ईमानदार और सकारात्मक छवि बन चुकी है। कहानीकार शिवमूर्ति कहते हैं कि “इस सृष्टि की सबसे अच्छी चीज वही है स्त्री.... क्योंकि वही सृष्टि कर सकती है। पुरुष चाहे जो बन जाये माँ कभी नहीं बन सकता।”¹ कहना न होगा कि इन्होंने अपनी कहानियों में स्त्री को महत्त्व दिया है। जो बार-बार इनके कहानियों में दिखाई पड़ती है। इनकी स्त्रियाँ कल्पना की ज़िन्दगी कम यथार्थ की ज़िन्दगी अधिक जीती हैं और पारिवारिक-सामाजिक जीवन के प्रति बहुत स्पष्ट भाव रखती हैं। शिवमूर्ति की कहानी की स्त्रियाँ तमाम विरोधी स्थिति में लड़ती हैं तथा विद्रूपता के खिलाफ आवाज़ उठाती हैं और प्रतिवाद भी करती हैं।

शिवमूर्ति की प्रायः सभी कहानियाँ गाँव पर केन्द्रित हैं। जिस प्रकार भारत के विभाजन को भीष्म साहनी, यशपाल, राही मासूम रजा, खुशवंत सिंह जैसे कहानीकारों की कहानियों को पढ़े बिना संजीदगी से नहीं जाना जा सकता। ठीक वैसे ही आज़ादी के बाद भारतीय गाँव की कोई भी तस्वीर फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कण्डेय, अमरकांत, शिवमूर्ति जैसे कहानीकारों की कहानियाँ पढ़े बिना कतई निर्मित नहीं की जा सकती। गाँव को कहानी की पृष्ठभूमि बनाने के संदर्भ में खुद कहानीकार शिवमूर्ति कहते हैं- “मेरे पास और कोई विकल्प नहीं था। मैं वहीं पैदा हुआ और बड़ा हुआ तो स्वाभाविक तौर पर कहानियों में गाँव रहेगा और आज भी मेरी मानसिकता गाँव की ही है।”²

‘केसर-कस्तूरी’ संग्रह की पहली कहानी ‘कसाईबाड़ा’ है। इस कहानी की मुख्य कथा पात्र शनिचरी एक अनपढ़, गरीब व शोषण की शिकार स्त्री है, जिसकी बेटी रूपमती को ग्राम प्रधान ने सामूहिक विवाह कार्यक्रम के बहाने पैसे लेकर शहर के एक आदमी को वेश्यावृत्ति कराने के लिए सौंप दिया है। शनिचरी को ग्राम प्रधान का प्रतिद्वन्दी व पेशे से अध्यापक, गाँव का चालाक लीडर अपने लाभ के लिए भड़काकर उसे ग्राम-प्रधान के दरवाजे पर अनशन के लिए बैठा देता है। लीडर तो बस परधानी पर कब्जा जमाकर अपने एम.एल.ए. व मिनिस्टर बनने का सपना पूरा करने के लिए शनिचरी को मोहरा बनाता है, किन्तु गाँव का अपाहिज व अधपगला अधरंगी खुलकर शनिचरी के पक्ष में खड़ा होता है। वह अकेला ही गाँव में घूम-घूमकर परधान व लीडर की पोल खोल-खोलकर विरोध के स्वर बुलन्द करता रहता है। जब प्रधान दरोगा की शह पाकर शनिचरी को अनशन स्थल से उठवा फेंकता है, तब अधरंगी प्रधान व उसके बेटे के पुतले बनाकर सारे गाँव में मुनादी करके शनिचरी से शाम को बबूल के एक टूँठ पर उन दोनों को फाँसी दिला देता है। यहां शिवमूर्ति ने शनिचरी का जो रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है, वह एक आत्मविश्वास से भरी विद्रोही स्त्री का है।

‘कसाईबाड़ा’ कहानी में अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की यह प्रवृत्ति सिर्फ शनिचरी या अधरंगी तक ही सीमित नहीं है। प्रधान की अत्याचारी गतिविधियों के विरुद्ध प्रधानिन के विद्रोह का जो दृश्य शिवमूर्ति ने खींचा है, वह विभिन्न राम कथाओं में लंकापति रावण को समझाने के लिए पत्नी मंदोदरी द्वारा किए गये शालीन प्रतिरोध से कहीं ज्यादा तीक्ष्ण व धारदार है, ‘हाथ झटककर प्रधान की पत्नी बड़बड़ाने लगती है, ‘ई गाँव लंका है। इहां लंकादहन होवेगां रावन तू ही हो। लीडर बना है बिभीखन। तोहरे दूनों के चलते गाँव का सत्यानाश होवेगा। होई रहा है। बहिन-बिटिया बेचो। हमहूँ का बेचि लेव। रुपया बटोरो।’

इसी प्रकार जब लीडर मुख्यमंत्री को निवेदन देने के बहाने से धोखे से अनपढ़ शनिचरी के दस्तखत कोरे स्टाम्प पेपर पर कराकर उसकी जमीन हड़प लेता है और पत्नी से झूठा आश्वासन दिलवाकर प्रधान उसे धोखे से अनशन तुड़वाने के बहाने जहर पिलाकर मार देता है। तब लीडर के घर में भी विद्रोह की ज्वाला भड़क उठती है। उनकी चालाकी भरी गतिविधियों से त्रस्त लीडर की पत्नी कहती है- 'धोखेबाज बेईमान। तुम्हारे ही पाप के कारण मेरी कोख नहीं फल रही है। तुम लोग कसाई हो। सारा गाँव कसाईबाड़ा है। मैं नहीं रहूँगी इस गाँव में।' निश्चित ही 'कसाईबाड़ा' कहानी शिवमूर्ति की एक बेहद प्रभावशाली कहानी है, जो हमारे ग्रामीण जीवन में व्याप्त शोषण व अत्याचार को व्यक्त करती है।

संग्रह की दूसरी कहानी है- 'अकालदंड।' इस कहानी की केन्द्रीय पात्र भी एक दलित महिला सुरजी है। राहत सामग्री बँटवाने वाला इलाके का सेक्रेटरी मेहनत-मंजूरी कर अपना व बूढ़ी माई का पेट पालने वाली सुरजी की आकर्षक देह को भोगने के लिए पागल हो उठता है। वह उसकी इज्जत लूटने के लिए उतावला होकर एक रात सुरजी की झोपड़ी में घुस जाता है। सुरजी अपनी तरफ से प्रतिरोध करती है। इस प्रतिरोध में सेक्रेटरी के आगे के दोनों घोड़ा का दाँत टूट जाते हैं। 'अकाल दंड' ही शिवमूर्ति की एक ऐसी कहानी है जिसमें उनकी गरीबी, अत्याचार व शोषण की शिकार नायिका प्रतिरोध व संघर्ष करते-करते एक ऐसे मुकाम पर पहुँच जाती है, जहाँ वह रणचंडी बनकर दुश्मन पर हमला कर देती है और अंततः आततायी को सजा देने में सफल होती है, भले ही एक अपराधिनी बनकर। जब सेक्रेटरी गाँव के दबंग रंगी बाबू का इस्तेमाल करके सुरजी को अपने कैम्प तक बुलवाने में सफल हो जाता है, तब सुरजी के पास अपनी इज्जत बचाने का और कोई चारा नहीं बचता और वह साहस व संघर्ष के शीर्ष पायदान पर पहुँच जाती है। इस कहानी का यह अंतिम दृश्य पुरुष-अत्याचार के विरुद्ध होने वाले एक स्त्री संघर्ष के जिस चरम गंतव्य तक हमें ले जाता है, वह बेमिसाल है, सेक्रेटरी के तम्बू के अन्दर-बाहर भीड़ जमा हो गई है। अंदर का दृश्य बड़ा भयानक है- 'सिकरेटरी बाबू पलंग पर नंग-धड़ंग पड़े छटपटा रहे हैं। सुरजी ने हँसिये से उसकी देह का नाजुक हिस्सा अलग कर दिया है और पिछवाड़े के रास्ते भागकर अँधेरे में गुम हो गई है।'³

प्रतिरोध के स्त्री-स्वर शिवमूर्ति की अन्य कहानियों में भी तरह-तरह के प्रसंगों में बिखरे पड़े हैं। ये स्वर कही एक पत्नी के हैं, कहीं एक माँ के, कहीं एक बहु के, कहीं एक सामान्य अबला के। 'भरतनाट्यम' कहानी में तो शिवमूर्ति ने एक

नकारा व बेरोजगार बेटे के प्रति माँ के भीतर उपजे गुस्से को भी एक अलग ही तरह का ग्रामीण रूपक गढ़कर उभारा हैं यहाँ बेटा गोबर से कंडे पाथती अपनी माँ की शारीरिक भाषा के माध्यम से ही उसके गुस्से की तीव्रता को महसूस कर लेता है, 'मुझे देखकर वे अपना हाथ गोबर पर और जोर-जोर से पटकने लगती है। लगता है, यह हाथ गोबर पर नहीं, मेरे गालों पर पड़ रहा है- थप्प, थप्प! और मेरे चेहरे पर गोबर छोप उठा है।'

'तिरिया चरित्तर' भी एक स्त्री-प्रधान कथा पात्र वाली शिवमूर्ति की सर्वाधिक चर्चित कहानी है। इसकी नायिका विमली का बाप अपाहिज है और माँ बूढ़ी तथा लाचार। बचपन में ब्याहे पति का अता-पता नहीं और उसकी तरफ से भी कोई खोज खबर नहीं। भाई शादी करके जोरू का गुलाम बनकर अलग रह रहा है, इसलिए वह माँ-बाप की जिम्मेदारी सँभालने के लिए सरपंच के घर में काम पर लग जाती है, लेकिन उधार न देने की वजह से वह काम छोड़कर भट्टे पर काम करती है। वहाँ भी उसे सब गलत निगाह से देखते हैं। एक लड़की भट्टे पर काम करे और लोग बोल न बोले आखिर यह कैसे हो सकता है? खुद शिवमूर्ति के शब्दों में- 'ले टरेनिंग। बहुत लोग टरेनिंग देने के लिए लोक लेने को बैठे हैं वहाँ।'⁴ लेकिन विमली किसी की परवाह नहीं करती। उसे मालूम है कि स्वाभिमान का जीवन जीने के लिए अपना जांगर चलाना ही पड़ेगा। लोग पीठ पीछे उल्टी-सीधी बातें करते ही रहते हैं। वह भट्टे पर काम शुरू कर देती है। जिससे उसके घर की हालत सुधर जाती है। विमली मन ही मन डाइवर जी को चाहती है, जो भट्टे पर अपनी ट्रक को लेकर अक्सर आता रहता है। यह चाहना बिल्कुल अलग तरीके का है। एक स्त्री द्वारा एक पुरुष के साथ एक दोस्त की तरह रहने-बरतने की चाहत, लेकिन हमारी भारतीय मानसिकता इस बात की इजाजत कहाँ देती है? दिक्कत यही है कि हमारे यहाँ एक लड़की की पुरुष मैत्री की चाहत को अक्सर उसकी यौन लिप्सा से ही जोड़ दिया जाता है। विमली बस अपने पति के लिए अपने को सुरक्षित रखना चाहती है और यह समाज है कि बिना सोचे समझे विमली की टीका टिप्पणी करता है, लेकिन विमली सजग-सतर्क है। वह समाज की नज़रों को और उसकी नियति को अच्छी तरह पहचानती है। इसी क्रम में एक दिन देर से घर लौटते हुए विमली को पहुँचाते समय विल्लर जब बदमाशी पर उतर आता है तो वह उसको दाँत काट लेती है। वह अपनी अस्मिता की रक्षा करना बखूबी जानती है, लेकिन भेड़ियों से भरे समाज में वह कब तक अपनी रक्षा कर पायेगी।

कहानी तब एक निर्णायक मोड़ लेती है जब विमली का ससुर विसराम उसका गौना लेने आता है। ससुर होते हुए भी विसराम की नज़र अपनी पतोहू विमली पर है। विमली इस कौटुम्बिक यौन प्रताड़ना का अपने स्तर से लगातार विरोध करती है। यौन-पिपासु बिसराम तरह-तरह के जतन करता है विमली को रिझाने-मनाने-पाने के लिए। इसमें कामयाब न हो पाने पर वह छल का सहारा लेता है। आखिर प्रसाद के बहाने विसराम विमली को अचेत कर अपनी यौन पिपासा बुझाता है और रात ही रात फिर मंदिर पर चला जाता है। अपनी पोल खुलने के डर से विमली पर तमाम चारित्रिक इल्जाम लगाकर पंचायत के सामने खड़ा करता है। आखिर पंचायत फैसला करती है- 'गाँव की नाक कटाने वाली, गाँव की इज्जत में दाग लगाने वाली जनाना को बेदाग नहीं छोड़ा जा सकता।' इसकी कोई माफ़ी नहीं। पंचायत विमली के माथे पर दागने की सजा सुनाती है। इस निर्णय का प्रतिरोध एक स्त्री ही करती है, लेकिन उसकी आवाज़ को दबा दिया जाता है। अंततः विसराम को ही अपनी दागी बहू विमली को दागने का काम सौंपा जाता है। दिप-दिप लाल कलछुल से दागने पर एक चीख के साथ विमली बेहोश हो जाती है। ऐसे में पुजारी का यह कहना की तिरिया चरित्तर को समझना आसान नहीं है, पूरे पुरुष समाज की नृशंसता का प्रतीक बन जाता है।

'तिरिया चरित्तर' कहानी जहाँ मन को कड़वाहट और जुगुप्सा से भर देती है वहीं 'केसर-कस्तूरी' कहानी दुःख, निराशा और करुणा से द्रवित कर देती है। इस कहानी की केन्द्रीय पात्र केसर है। केसर एक खुशमिजाज और कामकाजी लड़की है, जिसके पास तमाम तरह के अचूक देहाती नुस्खे हैं और जिनकी बदौलत वह जल्दी ही कालोनी के लोगों का दिल जीत लेती है। अब उसके गौने की तारीख तय की गयी है। उसकी शादी कक्षा आठ पास करते ही हाईस्कूल में पढ़ने वाले एक लड़के से कर दी गयी थी। एक साल बाद नैरेटर केसर के गाँव किसी काम से जाता है। वहाँ वह पाता है कि केसर की चपलता चंचलता गायब है। 'दैहिक आभा क्षीण है। मुख मलीन! कैशौर्य की अकाल मृत्यु।' पता चलता है कि केसर के पति की एक दुर्घटना की वजह से नौकरी छूट गयी है और पारिवारिक अलगाव के चलते उसकी माली स्थिति खराब हो गयी है। केसर अपने पति को नैरेटर यानी अपने मौसा से कोई नौकरी दिलाने की गुजारिश करती है, जो एक अधिकारी हैं। तमाम कोशिशों के बावजूद केसर के पति को कोई नौकरी नहीं मिल पाती। हार-थक कर वह एक भट्टे पर मुंशीगिरी करने लगता है। परिवार की गाड़ी को खींचने के लिए केसर भी हाड़-तोड़ मेहनत करने लगती है, लेकिन एक

महिला का कामकाजी होना भला घर वालों को कैसे सुहाता। उसके जेठ जो पहले ही अपने स्वार्थवश अलग हो गये हैं, उस पर तमाम गलत इल्जाम लगाने लगते हैं। इसी बीच केसर को एक बच्ची भी होती है, लेकिन वह दो महीने की होते-होते चल बसती है। दुखों का पहाड़ ढोते केसर को जब ससुराल से विदा कराने के लिए उसके पिता और मौसा यानी नैरेटर उसके यहाँ दो साल बाद जाते हैं, तो वह लौटने में असमर्थता व्यक्त करती हैं। क्योंकि उसके कन्धों पर बूढ़ी सास और बूढ़े बैल के परवरिश की जिम्मेदारी है। उन्हें छोड़कर वह कहीं भी कैसे जाय? वह अपनी बात के समर्थन में कुछ अकाट्य तर्क भी पेश करती है। और अंततः एक लोकगीत की तर्ज पर पिता को आश्वस्त करती है- 'टुटही मड़ईया मा जिनगी बितऊबे, नाही जइबे आन की दुवारी जी।' ¹⁵ शिवमूर्ति ने इस कहानी में लोकगीत का जिस तरह से प्रयोग किया है, उससे जीवन-स्थितियाँ और अधिक मार्मिक और कारुणिक रूप में पाठकों के हृदय-पटल पर चित्रित हो जाती हैं।

इसी प्रकार से शिवमूर्ति की 'सिरी उपमा जोग' कहानी एक स्त्री के आत्मसमर्पण और त्याग की कहानी है। एक ग्रामीण स्त्री अपने पति की पढ़ाई के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर देती है। एक अच्छे पद पर नौकरी मिलने के बाद उसके पति का मन गाँव से टूटने लगता है। वह शहरी बनकर रहना चाहता है। आज वही पत्नी उसे गवारूँ नज़र आने लगती है। पत्नी के त्याग और प्रेम को भुलाकर शहर में ममता नाम की लड़की से दुबारा शादी कर लेता है। वह अपने बेटे तक को पहचानने से इंकार कर देता है। आज बहुत सारे शादीशुदा लोग जो गाँवों से सम्बन्ध रखते हैं, जब वह पढ़ाई या नौकरी के लिए शहर में आते हैं तो उनमें यह प्रवृत्ति होती है कि वह अपने पुराने संबंधों को छुपाते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि उसको अनेक कष्टों से गुज़रना पड़ता है। संबंधों का बिखराव उनकी नियति बन जाती है।

अतः हम देखते हैं कि शिवमूर्ति की कहानियों के स्त्री पात्र हमेशा जूझती रहती है। 'अकालदण्ड' की 'सुरजी' जहाँ आखिरी क्षण तक सेक्रेटरी से जुझती रही, वहीं दूसरी ओर 'तिरिया चरित्तर' की 'विमली' मायके से ससुराल तक संघर्षशील रही और अस्मिता की लड़ाई लड़ती रही और केसर भी पति तथा परिवार और समाज का कोप भाजक बनी। इतना ही नहीं 'सिरी उपमा जोग' में लालू की माँ आजीवन उपेक्षित और हाशिए पर रही। यहाँ तक कि पति के सुख से भी वंचित रही।

शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में स्त्री पात्र को बहुत ही गहरे रूप में उद्घाटित किया है। इसके बारे में बिना किसी

लाग-लपेट के शिवमूर्ति ने खुद यह स्वीकार किया है कि “हमेशा से स्त्रियाँ मुझसे बहुत ज्यादा करीब रही हैं। वो चाहें छोटी बच्ची हो या हमारी दादी-नानी टाईप की स्त्रियाँ हमेशा से ही खुलकर हमसे बात करती रही हैं। इसी के चलते मुझे बार-बार इस (स्त्री) मानसिकता में जाने का मौका मिल गया।”⁶

शिवमूर्ति की कहानियों की केन्द्रीय पात्र अक्सर स्त्रियाँ हैं। वे स्त्रियाँ जो सब जगह संदेह की नज़र से देखी जाती हैं, वे स्त्रियाँ जब अपनी मर्जी से जीवन जीने की कोशिश करने लगती हैं तो समाज की आँखों में तुरंत ही खटकने लगती हैं। गरीबी हो, अकाल हो या कोई भी दुःख-विपत्ति की घड़ी स्त्रियाँ ही उसकी पहली शिकार बनती हैं। शिवमूर्ति ने अपनी कहानी के माध्यम से इसको व्यक्त किया है।

अतः उपरोक्त विवरण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि शिवमूर्ति की कहानियों में स्त्री जीवन के अनेक चित्र उपस्थित हैं जो स्त्री जीवन की व्यथा कथा को व्यक्त करती

है। इनकी कहानियाँ भारतीय ग्रामीण सन्दर्भ में स्त्रियों को ज्यों का त्यों रेखांकित करती है।

सन्दर्भ-

1. गौतम सान्याल, शिवमूर्ति से बातचीत, ‘ड्रामा हो रामा’ कथादेश (दिसम्बर 2001) सं. हरिनारायण, नई दिल्ली, पृ. 71
2. शिवमूर्ति, अकालदण्ड’, केसर कस्तूरी, 2007, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 72
3. पाखी, जून 2012, पृ. 35
4. शिवमूर्ति, तिरिया चरित्र, केसर कस्तूरी, 2007, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 100
5. शिवमूर्ति, केसर कस्तूरी, 2007, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 164
6. पाखी, जून, 2012, पृ. 38

शोध छात्रा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

वाङ्मय बुक्स, अलीगढ़

हिन्दी के मुस्लिम कथाकार : शानी

हिन्दी में वह स्त्री-विमर्श का दौर नहीं था। स्त्री यहाँ सिर्फ सहती, घुटती और रोती है, बिना किसी सक्रिय प्रतिरोध के। समाज चाहे मुस्लिम हो या हिन्दू, उसकी यातना का अंत नहीं है। निम्न मध्यवर्गीय समाज में, दुनिया-जहान से कटे एक द्वीप के मानिन्द समाज में, प्रगति, विकास और शिक्षा के अभाव में स्त्री जैसी हो सकती थी वैसी ही यहाँ है। सामन्ती रियासतों के अमल और आदिवासी समाज की लम्बी होती छायाओं के बीच स्त्री जो हो सकती थी, उसी का एक अन्तरंग और विश्वासनीय चित्र ‘काला जल’ में देखा जा सकता है। मूल्य 500/-

लोक-जीवन का कवि: त्रिलोचन

डॉ. इफ्त असगर

त्रिलोचन मूलतः लोक-जीवन और लोक-मानस के कवि हैं। उनकी जड़ें लोक में बहुत गहराई तक धंसी हुई हैं। उनकी दृष्टि चाहे जहाँ रहे, लेकिन उनके पैर धरती पर ही जमे होते हैं, इसीलिए उनकी कविता के तन-मन से मिट्टी की सोंधी गंध फूटती है। उनकी कविता में लोक-जीवन के इन्द्रधनुषी रंग हैं। वहाँ की बोली-बानी, रीति-रिवाज़, रहन-सहन, खेत-खलिहान से लेकर प्रकृति की रंग-बिरंगी छटा उनकी कविताओं में भरे पड़े हैं। इसीलिए उन्हें 'धरती का कवि' भी कहा जाता है। उनकी सरलता, सहजता और गँवई संस्कार ही उन्हें लोक से जोड़ती है। लोक में उनकी जितनी गहरी पैठ और लगाव है, उनका कवि-कर्म उसका प्रमाण है। लोक-जीवन और लोक-मानस से उनका संबंध केवल कविता तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उससे उनका सरोकार और संवाद निरन्तर बना रहता है। उनके साथ वे उनके बीच के आदमी होते हैं। विश्वनाथप्रसाद तिवारी के शब्दों में कहें तो—'यही त्रिलोचन की अपनी दुनिया है-भारतीय जन की असली दुनिया'¹ त्रिलोचन खुद को 'उस जनपद का कवि' ऐसे ही नहीं कहते-उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा-दूखा है, नंगा है, अनजान है, कला-नहीं जानता/कैसी होती है क्या है? वह नहीं मानता²

त्रिलोचन की कविता को समझने के लिए उपर्युक्त पंक्तियों को समझना आवश्यक है। 'जनपद' गुरीबी का प्रतीक है जहाँ भूख है, दुख है, अज्ञानता है। यहाँ 'उस जनपद' का एक विशेष और विराट अर्थ है, इसे ज़िला-विशेष के अर्थ में समझना भ्रामक होगा। यहाँ 'उस जनपद' का अर्थ भारत के उन सभी जनपदों से है जहाँ भूख और दुख है, उदासीनता है। प्रश्न यह भी है कि भारत का वह कौन-सा जनपद है, जहाँ ये समस्याएँ नहीं हैं? शायद कोई नहीं। त्रिलोचन की कविताएँ लोक-मानस के प्रति उनकी चिंताओं को व्यक्त करती हैं। यही उनका प्रगतिवाद है। वे सैद्धान्तिक प्रगतिशीलता से अधिक जीवन-यथार्थ के कवि हैं। उन्हें

जितनी मार्क्सवाद और दर्शनशास्त्र की समझ थी, उतनी ही भारतीय पौराणिकता और भारतीय जन-जीवन के मनोविज्ञान, आदर्श और आचरण की समझ थी। रचना को उन्होंने लोक-मानस के अंतःकरण से जोड़ने का प्रयास किया।

त्रिलोचन अपनी मिट्टी से गहरे जुड़े हुए कवि हैं। मिट्टी से उन्हें गहरा लगाव है। उनका गँवई-संस्कार उन्हें बार-बार गाँव के जीवन की ओर खींचकर ले जाता है। वे सच्चे अर्थों में एक किसान कवि हैं। ग्रामीण और किसान-जीवन के चित्र उनकी कविताओं में भरे पड़े हैं। खेतिहर किसानों और मज़दूरों की संघर्षशीलता और श्रम का सम्मान बार-बार उनकी रचनाओं में प्रकट होता है-है धूप कठिन सिर ऊपर/थम गयी हवा है जैसे/ दोनों दूबों के ऊपर/रख पैर खींचते पानी/उस मलिन हरी धरती पर/मिलकर वे दोनों प्राणी/दे-रहे खेत में पानी³

त्रिलोचन ने स्वयं अपने व्यक्तित्व के बारे में भी खूब लिखा है। उनके नाम, रूप, वेशभूषा, गुरीबी, मानसिकता, स्वभाव, प्रेम और संघर्ष को उनकी कविताएँ बयान करती हैं, जो उनके जीवन का सत्य है, और तथ्य भी। वास्तव में त्रिलोचन का दुख और संघर्ष भारतीय जनसाधारण के दुख और जीवन-संघर्षों का ही प्रतीक है। उनकी सादगी, सरलता और सहजता भारतीय ग्रामीण-जीवन और किसानों का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। उनके पास कोई फैशन नहीं है, कपड़े भी कटे-फटे हैं। यह केवल त्रिलोचन की ही सच्चाई नहीं है, बल्कि उन करोड़ों भारतीय जनता की सच्चाई है जिन्हें एक वक्त का खाना भी मुश्किल से मिलता है। त्रिलोचन अपने दुख का गान या दिखावा नहीं करते, बल्कि बड़ी सादगी से अपनी सच्चाई को उजागर करते हैं। इसीलिए विश्वनाथ प्रसाद तिवारी लिखते हैं कि—'शुद्ध आत्मबयान होते हुए भी ये आत्मरति या आत्मग्रस्तता से मुक्त हैं। इनमें सहानुभूति बटोरने की आकांक्षा नहीं है। आत्मविगलन या रिरियाने का भाव नहीं है। अपने अभावों की विस्फारित प्रतिमा गढ़कर पुजवाने का छल नहीं है।'⁴ शायद इसीलिए उनके जीवन-यथार्थ

के द्वारा भारतीय जनसाधारण के जीवन-यथार्थ को आसानी से देखा जा सकता है-वही त्रिलोचन है, वह-जिस के तन पर गंदे/कपड़े हैं, कपड़े भी कैसे-फटे लटे हैं, यह भी फैशन है, फैशन से कटे-कटे हैं'..../चीर भरा पाजामा, लट लट कर गलने से/छेदों वाला कुर्ता, रूखे बाल, उपेक्षित/दाढ़ी-मूँछ, सफाई कुछ भी नहीं अपेक्षित'

वर्तमान समय में भारतीय किसानों और मजदूरों की दशा शोचनीय और दयनीय है। प्रतिवर्ष हज़ारों किसान आत्महत्या कर रहे हैं। राजनेताओं और पूँजीवादी संगठनों का गठजोड़ लगातार उनका शोषण कर रहे हैं। त्रिलोचन किसान-जीवन के यथार्थ के साथ ही, उनके शोषकों की ओर भी संकेत करते हैं, लेकिन केवल संकेत है, उनके यहाँ उनका मुखर विरोध या विद्रोही तेवर नहीं है-इलायची से बसा हुआ रुमाल लगाया/आँखों पर कि वह चले आँसू; और साथ ही/नाम किसान मजूर का लिया, और हाथ ही/नया दिखाया नेता ने, स्वर नया जगाया'

त्रिलोचन की किसान-दृष्टि या किसानी संस्कार उनकी कविताओं में बार-बार दिखायी पड़ता है और इसी चेतना का विस्तार उनकी कविताओं में प्रकृति के इंद्रधनुषी रंगों में दिखाई देता है। किसानी संस्कार का कोई भी कवि प्रकृति से अलग नहीं रह सकता, क्योंकि किसान-जीवन का आधार और संघर्ष प्रकृति पर ही निर्भर करता है। किसानों और ग्रामीण-जीवन के दुख-सुख प्रकृति से गहरे जुड़े होते हैं। त्रिलोचन की कविताओं में प्रकृति से सहज लगाव है। प्रकृति में परिवर्तन के साथ-साथ उनके मन में भावों के अंकुर फुटने लगते हैं। जब प्रकृति में नवीनता आती है, तो वे स्वयं स्फूर्ति से भर जाते हैं। ऋतुओं में बसंत उन्हें अधिक प्रिय है। नयी पत्तियों, नये फूलों, कोयल की कूक, हवा में भीनी-भीनी सुगंध से वे प्रफुल्लित हो जाते हैं। 'फूलों की चाँदनी' कविता में वे लिखते हैं-फूलों की चाँदनी नीम में जो आई है/खींच रही है सुरभि-डोर से मेरे मन को/बरबस अपनी ओर, भला कैसे इस जन को/कृपापात्र कर दिया सुछवि ने जो छाई है'

प्रकृति मानव-इतिहास और परम्परा से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। जीवित रहने की इच्छा मनुष्य को सहज ही प्रकृति की ओर ले जाती है। आज की पूँजीवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति में प्रकृति से मनुष्य का सरोकार कम होता जा रहा है। पूँजीवाद-बाज़ारवाद मनुष्य के प्राकृतिक जीवन के साथ ही प्रकृति को भी नष्ट कर रहा है। इसीलिए डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं-“पूँजीवाद प्रकृति की जीवनी शक्ति का बराबर नाश करता जा रहा है; पूँजीवादी लीक से हटकर अलग चलने वाला कवि मनुष्य के मन में उस जीवनी-शक्ति की रक्षा का भाव

जगाता है।”⁹ त्रिलोचन की कविता हमारे अन्दर प्रकृति की ललक पैदा करती है।

प्रकृति-चित्रों में त्रिलोचन का मन बहुत रमा है। उनकी प्रकृति की कविताओं में रूप, रस, गंध और ध्वनि का संसार बहुत व्यापक है। 'फूलों की चाँदनी', 'नीम जो आई है', 'गेहूँ जो के ऊपर', 'सरसों की रंगीनी', 'फूल मुझे भाए बबूल के' 'बादल घिरे हुए हैं' जैसी कविताओं में यह व्यापकता आसानी से देखी जा सकती है। इस सन्दर्भ में उनकी 'झांपस' कविता देखने लायक है-बादलों ने हलकी अँगड़ाई ली/एक ओर चमक ज़रा बढ़ गई/हवा नए अँखुओं से यों ही बतियाती है/उनका सिर हिलता है/फूल खिलखिलते हैं।¹⁰

त्रिलोचन की काव्य-चर्चा में यदि उनकी प्रेम-कविताओं की चर्चा न हो तो बात अधूरी रहेगी। उनकी प्रेम-कविताएँ सहजता, मधुरता और सादगी के वरक में लिपटी हुई हैं। रागात्मक संवेदना से उपजी प्रेम की तरलता 'परदेशी के नाम पत्र' में उलाहने में लिपटकर इस तरह सामने आती है-‘तुम्हें गाँव की क्या कभी याद आती है?’ और फिर प्रेम में पगे हुए मूक आमंत्रण के उत्तर में सत्य का संघर्ष उद्घाटित करते हुए वे कहते हैं-सचमुच, इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई/झूठ क्या कहूँ। पूरे दिन मशीन पर खटना, बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई/का हिसाब जोड़ना। फिर उठकर रोटी/करना। कभी नमक से कभी साग से खाना।¹¹

त्रिलोचन की खास बात यह है कि उनकी प्रेम-कविताओं में भी जीवन-संघर्ष और जीवन-यथार्थ के चित्र बिखरे हुए हैं। नयी कविता के कवियों की तरह उनका प्रेम रोमांटिक नहीं है, बल्कि वह यथार्थ-जीवन के धरातल पर खिलने वाला फूल है। उपर्युक्त पंक्तियों में वह संघर्ष साफ दिखाई देता है। परदेशी मजदूर के पत्र में उसका कठिन जीवन और मन की दशाओं को जिस कुशलता से प्रकट किया गया है, वह केवल त्रिलोचन ही कर सकते हैं। यह उनकी यथार्थवादी कला का एक उदाहरण है। इसीलिए मैनेजर पाण्डेय इस कविता के बारे में कहते हैं-“किसानों-मजदूरों की जिन्दगी की त्रासद स्थितियों को गहराई से महसूस करने वाला कवि ही यह लिख सकता है।”¹²

त्रिलोचन का प्रेम लोक-संस्कृति की अंतःगरिमा के साथ सघन और समृद्ध होता है। उनके लिए प्रेम एक शक्ति है, उत्साह है, जो उनके संघर्ष को ऊर्जा प्रदान करती है। त्रिलोचन को पत्नी का भरपूर प्यार मिला था। पत्नी का प्रेम उनके लिए प्रेरक है। ऐसा प्रेम जो उनकी दुर्बलता को समाप्त कर नई जीवनी-शक्ति का संचार करता है। उनका यह प्रेम जीवन और जगत की विस्तृत भाव-परिधि को बांधता है-मेरी

दुर्बलता को हरकर/नई शक्ति नव-साहस भरकर/तुमने फिर उत्साह दिलाया/कर्म-क्षेत्र में बढ़ संभलकर/तब से मैं अविरल बढ़ता हूँ/बल देता है प्यार तुम्हारा।¹³

त्रिलोचन का लोक-पक्ष उनकी भाषा में सबसे अधिक मुखर है। उनको चलता-फिरता पुस्तकालय या विश्वविद्यालय भी कहा जाता था। इसका एक बड़ा कारण उनका भाषाओं और शब्दों का ज्ञान था। उनकी भाषा कबीर, जायसी, तुलसी, निराला और प्रेमचन्द की भाषा-परंपरा में ही आगे बढ़ती है, क्योंकि जनसाधारण से जुड़ने का सामर्थ्य उनकी भाषा की प्रमुख विशेषता है। इसीलिए उन्हें जन-संस्कृति और लोक-संस्कृति का उन्नायक कवि कहा जाता है। समकालीन हिन्दी कविता में जो मिठास है, जो अलंकारहीनता, वस्तुपरकता और एक सक्रिय वर्णनात्मकता दिखायी देती है, उसमें त्रिलोचन की काव्यभाषा का बड़ा योगदान है।

उनका 'मेरा घर' हिन्दी और अवधी कविताओं का संकलन है। उनकी कविताओं में गँवई और किसानी भाषा का अधिक प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं ऐसे शब्दों का भी प्रयोग है जिसे केवल अवध-क्षेत्र के ग्रामीण ही समझ सकते हैं, लेकिन ऐसा प्रयोग बलपूर्वक नहीं, बल्कि प्रसंगवश ही हुआ है। 'कुंभनहान' कविता में 'सतुआ', 'पिसान', 'पछुआ' जैसे शब्दों का सुन्दर प्रयोग किया गया है, जिसे अवधी जानने वाला ही समझ सकता है-सतुआ और पिसान बाँधकर कुंभ नहाने/नर नारी घर पुर तज कर प्रयाग आये थे;/संगम की धारा में अपने पाप बहाने/की इच्छा रखने वालों का हल लाये थे।¹⁴

भाषा और शब्दों को लेकर जितनी सजगता और लगाव त्रिलोचन में है, उतना और किसी कवि में नहीं है। वह भाषा-शास्त्री थे। वे शब्द को ब्रह्म मानते थे और शब्दों के दुरुपयोग को महापाप मानते थे। उनकी कविताओं में एक भी फालतू शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। वे स्वयं कहते थे कि-“शब्द का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे पीढ़ियाँ प्रभावित होती हैं।”¹⁵ यह उनकी भाषा-संबंधी दूरदर्शिता का प्रमाण है।

भाषा का अर्थ भाषा ही नहीं, वह समझ भी है जो आदमी को आदमी से जोड़कर मानवीय संबंधों को व्यापक और आत्मीय बनाती है। त्रिलोचन की यह समझ उनकी कविता और भाषा को गाँव के किसान-मजदूर से जोड़ती है। त्रिलोचन वातानुकूलित कमरे में बैठकर लोक-जीवन का चित्रण करने वाले कवि नहीं हैं। वे तो उसी मिट्टी से निकले हुए ठेठ कवि हैं। नंदकिशोर नवल के शब्दों में कहें तो-“लोक-जीवन से त्रिलोचन का संबंध शौकिया नहीं है, जिसका प्रमाण उनमें

प्रयुक्त लोक-भाषा के ये शब्द देते हैं, जिस तक किसी नकली कवि की पहुँच नहीं हो सकती-छोलना, गेंडना, चुहना, चेंफ, मोंहकड़ा मही, पीना, बड़ा, चकरा, पनुआ आदि।”¹⁶

इस तरह त्रिलोचन की कविताएँ मानवीय सौन्दर्य, प्रेम और आशा का संचार करती हैं। उन्होंने किसानों और जनसाधारण के बीच अपने भाव-बोध और जीवन की सहज प्रक्रिया से निर्मित भाषा को बड़ी दक्षता और गहराई के साथ कविता में प्रयोग किया है। इसी कारण उनकी कविता मानव-जीवन की व्याख्या बन जाती है। किसानों के प्रति उनकी दृष्टि सहज, आत्मीय और स्वाभाविक है। ग्राम-संस्कृति और किसान-जीवन के चित्र उनकी कविताओं में बिखरे हुए हैं। उन्होंने खेत-खलिहानों के प्रतिबिंबों के साथ ही ग्रामीण जीवन के क्रिया-कलाप और भावात्मक प्रसंगों के विविध-चित्र प्रस्तुत किये हैं। वे लोक-जीवन के सच्चे कवि हैं।

सन्दर्भ-

1. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, समकालीन हिन्दी कविता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2010, पृ. 75
2. त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय आवृत्ति-1982, पृ. 17
3. सम्पादक-गोविन्द प्रसाद, त्रिलोचन के बारे में, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-1994, पृ. 151
4. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, समकालीन हिन्दी कविता, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-2010, पृ. 73
5. उस जनपद का कवि हूँ, पृ. 11
6. वही, पृ. 12
7. त्रिलोचन, ताप के ताए हुए दिन, संभावना प्रकाशन, हापुड़, प्रथम संस्करण-1980, पृ. 52
8. उस जनपद का कवि हूँ, पृ. 52
9. सम्पादिका-प्रो. निर्मला जैन, संकल्प समीक्षा-दशक, हिन्दी अकादमी, दिल्ली, संस्करण-1992, पृ. 207
10. ताप के ताए हुए दिन, पृ. 37
11. वही, पृ. 54
12. सम्पादक-गोविन्द प्रसाद, त्रिलोचन के बारे में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1994, पृ. 153
13. आजकल, अप्रैल-2010, पृ. 38
14. त्रिलोचन, अरघान, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1983, पृ. 40
15. आजकल, अप्रैल-2010, पृ. 34
16. वही, पृ. 48

एसोशिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग, ए.एम.यू. अलीगढ़

नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों में 'राम' की संकल्पना

अनीश कुमार

पौराणिक सन्दर्भों, प्रसंगों एवं मूल्यों की युगानुरूप तर्कसंगत, व्यवहारिक एवं आधुनिक व्याख्या द्वारा एक विचार क्रान्ति के सूत्रपात का श्रेय नरेन्द्र कोहली को है। रामकथा भारतीय संस्कृति का अक्षय स्रोत है। व्यक्ति, परिवार और समाज के पारस्परिक संबंधों का आदर्श मॉडल है। भारतीय संस्कृति में धीरे-धीरे रुढ़ होते जा रहे और जड़ता की स्थिति को प्राप्त हो रहे विश्वासों एवं मान्यताओं को वैज्ञानिक धरातल प्रदान करना नरेन्द्र कोहली की भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी सेवा है। राम युगों के अन्तराल के कारण लोगों के श्रद्धा के केन्द्र बनते-बनते इतने ऊँचे हो गए थे कि धीरे-धीरे सातवें आकाश के पार भगवान के उच्च आसन्न पर ही आरुढ़ हो गये, नरेन्द्र कोहली ने उन्हें फिर सामान्य जन के मध्य में स्थापित किया। और राम कथा के माध्यम से भारतीय मूल्यों एवं सांस्कृतिक मान्यताओं को प्रतिष्ठित करने का भगीरथ प्रयास किया है। नरेन्द्र कोहली के रामकथा पर आधारित उपन्यास शृंखला 'दीक्षा', 'अवसर', 'संघर्ष की ओर' और 'युद्ध' जो बाद में अभ्युदय शीर्षक से दो खण्डों में प्रकाशित हुए, में समकालीन स्थितियों और सरोकारों को गहरी संवेदनशीलता एवं गहन-चिन्तन के साथ प्रस्तुत करते हुए परम्परागत रामकथा को आधुनिक संघेतना के आलोक में तर्क-संगत पुनर्व्याख्या द्वारा नवीन अर्थ और सर्जनात्मक रूप देने का प्रयास किया। नरेन्द्र कोहली ने राम को अलौकिक शक्ति से सम्पन्न न दिखा जन सामान्य के रूप में चित्रित किया है। उनके राम भी दुख, विषाद, संताप से परिचित है एक अपेक्षित माता के सबकी आंखों में खटकने वाले पुत्र के विषय में यह मान लेना उचित नहीं है कि वह दुःख से अनभिज्ञ होगा।'

उपन्यासकार ने राम को मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित कर एक ऐसे नेतृत्व या प्रतिनिधित्व की परिकल्पना की है कि जो पूरे राष्ट्र, समाज को अन्याय के प्रति संघर्षशील दृष्टिकोण प्रदान करता है, आज यदि हमारा समाज दिशाहीन, पतनोन्मुख, मूल्यहीनता, अनुशासनहीनता की स्थिति में हैं इसका प्रमुख

कारण यह है समाज को कोई ऐसा वांछित प्रतिनिधि नहीं मिल पाया जो समाज को उसके गतंव्य तक पहुंचने में सहायता करें लेकिन लेखक ने राम के रूप में समाज में ऐसे व्यक्ति की कल्पना की है जिसका प्रभाव अमोघ हो, जिसका प्रतिनिधित्व या नेतृत्व सार्थक हो, राम का आना निष्फल नहीं हुआ गुरु सोच रहे थे - 'उस गगन में, जो उन्हें अपने पिता के हत्यारे का नाम बताने के पश्चात् फूट-फूटकर रोया था और इस गगन में, जो मारीच को ढूँढने के लिए लंका तक जाने को प्रस्तुत है, कितना अन्तर है। राम का प्रभाव अमोघ है। नरेन्द्र कोहली ने अपने उपन्यासों में उन तमाम मुद्दों पर कलम उठाई है जो सामयिक है, ज्वलन्त है। आज सर्वत्र पूँजीवाद का बोलबाला है। निर्धन व्यक्ति को हिकारत दृष्टि से देख उसका शोषण, दमन, किया जाता है। उच्च वर्ग के लोग उनके रक्त पिपासु बन उसके साथ पशुवत् व्यवहार करते हैं। लेखक ने राम के माध्यम से समतावादी समाज का एक बिंब प्रस्तुत किया है जहां प्रत्येक व्यक्ति समान हो, स्वयं अपना स्वामी हो, अपने परिश्रम का स्वयं भोक्ता हो। शक्ति का केन्द्रीकरण न हो, प्रत्युत शासन की शक्ति जनता के पास हो किसी भी व्यक्ति को खान का स्वामी बनाओगे तो वह धन का बल पाकर, सत्ता को हथिया लेगा। अपने लिए सुख और सुविधाएँ जुटायेगा और तुम्हें वंचित करेगा। अंततः वह भी मनुष्य नहीं, पशु समझेगा। वह भी राक्षस हो जायेगा और तुम्हारा रक्त पियेगा हड्डियां चबा जाएगा।' नरेन्द्र कोहली ने ऐसे आशावादी और दूरदृष्टा राम को अपने उपन्यासों में उकेरा है जो धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, शोषक-शोषित, उच्च-निम्न के संघर्ष के मध्य आश्वस्त है कि विजय श्री धर्म और न्याय के मस्तिष्क पर ही शोभायमान होगी और जिससे सामान्य जन का जीवन भी बदलेगा और अन्याय के प्रति उनका शिथिल व्यवहार भी मैं राम हूँ, शिवर और राम अपने किसी दायित्व से नहीं भागता। यदि यह मेरे ही कारण हुआ है तो तनिक भी बुरा नहीं हुआ। यदि मैंने दो जीवन-दर्शनों के विरोधों को

इस उग्रता से उभाकर एक दूसरे के आमने-सामने खड़ा कर दिया है तो क्या हुआ? विनाश लीला तो होगी, किंतु आप मेरा विश्वास करें कि इस विनाश-लीला से राक्षस-पक्ष अपने अत्याचारों का दंड पाएगा- जिस विनाश की कल्पना से आप आशंकित हैं, जन-सामान्य का वह विनाश नहीं हो पाएगा। उनके मरने के नहीं, ढंग से जीने के दिन आ रहे हैं।⁴

आज समाज में नैतिकता, मूल्य, आदर्श, संस्कार विलुप्त होने लगे हैं। इसके स्थान पर व्यभिचार, पाशिवकता व पैशाचिकता, विसंगतियां, कुरीतियां व्याप्त होने लगी हैं। दाम्पत्य संबंधों का जो प्रासाद विश्वास, समर्पण, एकनिष्ठता के स्तम्भों पर अवलंबित था आज वह हिलने लगा है। विडम्बना यह है कि आज विवाहेत्तर लोगों की जीवन-शैली बन गए हैं। एकनिष्ठा का स्थान विकल्प ने ले लिया है और प्रेम का स्थान वासना ने। उपन्यास में राम के चरित्र के उदात्त एवं अनुकरणीय पक्ष को लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। राम शर्पूणखा के काम आह्वान को अस्वीकार करते हैं साथ ही विवाहेत्तर संबंध जैसी दूषित व निकृष्ट प्रवृत्ति की भर्त्सना करते हैं और सीता के प्रति अपने प्रेम की अनन्यता का परिचय देते हुए कहते हैं प्रश्न यह है कि क्या अपनी पत्नी से सुन्दर स्त्री मिलते ही पति अपनी पत्नी को छोड़ जाएगा? अपनी पत्नी के प्रति पति की ईमानदारी क्या तभी तक है जब तक उससे अधिक सुन्दर कोई अन्य स्त्री नहीं मिल जाती।⁵ उपन्यास में राम धैर्य, विवेक, की प्रतिमूर्ति है वे प्रतिकूलताओं में भी अनुकूलताओं को ढूँढ़ने वाले व्यक्ति हैं। सीता हरण के पश्चात् राम व्यग्र नहीं होते अपितु व्यवस्थित ढंग से सीता को ढूँढ़ने के लिए लक्ष्मण से योजनाएं बनाने को कहते हैं। सचमुच धैर्य की प्रतीक्षा संकट में ही होती है और नरेन्द्र कोहली के राम इस कसौटी पर पूरी तरह खरे उतरते हैं। हमें धैर्य तथा विवेक से योजनाबद्ध रूप में सीता की खोज करनी होगी। उसकी शक्ति के अनुरूप अपना संगठन करना होगा। ऐसा न हो कि अपना असावधानी से हम अपना अहित कर बैठे और वैदेही के लिए और अधिक कष्ट के कारण बन जाएँ ... अपने शोक को ऊर्जा में बदलो।⁶ संगठन में वह शक्ति जो बड़े से बड़े युद्धों में विजय दिला सकती है। जनता के संगठित होने से सत्तासीन काँपने लगते हैं। लोगों के संगठन की शक्ति का प्रभाव बम, बारूद, तोपों से कही अधिक प्रभावशाली एवं स्थायी होता है। जहाँ-जहाँ व्यक्ति संगठित होकर अन्याय, भ्रष्ट व्यवस्था, शासनतंत्र की जननिरपेक्षता के विरुद्ध खड़े हुए हैं वहाँ-वहाँ सत्ता परिवर्तन का उदाहरण देखा जा सकता है। राम भी संगठन की शक्ति, महत्ता, गरिमा एवं महिमा के विषय में सुग्रीव के समक्ष प्रमाण

प्रस्तुत करते हैं।

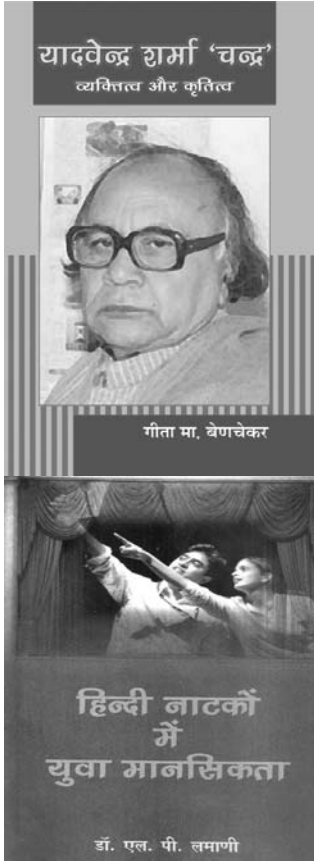
हमारे पास अनुभव-सिद्ध प्रमाण हैं। सिद्धाश्रम से लेकर पंचवटी तक राक्षस अपराजेय शक्ति माने जाते थे, किन्तु जहाँ-जहाँ लोग संगठित होकर उठ खड़े हुए हैं वहाँ-वहाँ वे राक्षसों से अधिक शक्तिशाली हो गए।⁷ नरेन्द्र कोहली के राम रुढ़ियों, परम्पराओं, नीरस व बासी मान्यताओं को तोड़ने वाले मानवीय शक्ति से अनुप्राणित व्यक्ति हैं, सीता को रावण से मुक्त करवाने के पश्चात् वे सीता के सतीत्व पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाते अपितु वे सीता को सहज रूप में स्वीकार कर लेते हैं। राम की धारणा यह है कि सतीत्व मन से होता है मेरी प्रियतम! शरीर से नहीं। किसी व्यक्ति को घाव लग जाए, उसकी भुजा या टाँग कट जाए तो वह पतित या चरित्रहीन नहीं हो जाता। राम द्वारा विभीषण को दिया परामर्श वास्तव में एक ऐसा व्यवहारिक ज्ञान है जो प्रत्येक शासक के लिए अनिवार्य है। उपन्यास में राम नीति के ज्ञाता हैं। राम बताते हैं कि किसी भी वस्तु व पदार्थ की अतिशयता जीव के लिए घातक हो सकती है। सुख क्या है? इन्द्रियों का सुख भौतिक सुख है। वह उपयोगिता की दृष्टि से अनिवार्य है, किन्तु जब वह उसकी अनिवार्यता का अतिक्रमण कर अतिरिक्त सुख खोजता है, तो रोग बन जाता है। भोजन पौष्टिकता तक अनिवार्य है किन्तु स्वाद की सीमा में प्रवेश करते ही वह रोग को जन्म देता है। निद्रा विश्राम की सीमा तक अनिवार्य है, किन्तु अकर्मण्यता तक पहुँचकर वह विष में बदल जाती है। यौन सुख, जाति सुरक्षा की वृत्ति-शरीर की आवश्यकता तक निर्माण है, विलास के क्षेत्र में पहुँचकर वह क्षय है।⁸ नरेन्द्र कोहली के साहित्य में प्रस्तुत राम जनजागृति का शंखनाद करते हैं। जन सामान्य को उनके अधिकारों के प्रति संघर्षशील दृष्टिकोण प्रदान करते हैं और साथ-साथ उनको उनके कर्तव्य के प्रति भी सचेत कर रहे हैं, वे जानते हैं कि जनता में ऊर्जा विपुल मात्रा में है किन्तु इस ऊर्जा को निर्माण कार्य में लगाने के लिए वे चेतना का उद्घोष कर दूषित एवं शोषित सामाजिक व्यवस्था के प्रति विप्लव व क्रांति का आह्वान कर रहे हैं वे सुशासन की नियमावली प्रस्तुत करते हैं और शासक को उसके कर्तव्य एवं दायित्वबोध के प्रति सजग करते हैं इस संघर्ष के संदर्भ में जिन्हें चेतना मिली है जिन्होंने विद्रोह करना सीखा है, अपने अधिकारों के लिए युद्ध करने जाना है, उनकी ऊर्जा को निर्माण की ओर लगाए रखना। तुम असावधान हुए तो वे तुम्हारा ही नाश कर देंगे वे तुम्हारे सतत् जागृत प्रहरी हैं।⁹ सचमुच नरेन्द्र कोहली के संकल्पित राम मानवता के उद्धारक और अन्याय के प्रति संघर्षशील, अधिकारों के प्रति सचेत, समाज के अभ्युदय के लिए समर्पित हैं।

सन्दर्भ-

1. नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय (दीक्षा), अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली 2002, पृ. 38
2. वही, 79
3. नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय, (संघर्ष की ओर), अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली 2002, पृ. 436
4. वही, पृ. 553
5. नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय (साक्षात्कार), अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली : 2002, पृ. 603
6. नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय, (पृष्ठभूमि), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2004, पृ. 72
7. नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय, (अभियान), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2004, पृ. 215
8. नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय, (युद्ध), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2004, पृ. 613
9. वही, 615
10. वही, 616

शोधार्थी हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

वाङ्मय बुक्स, अलीगढ़



यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

साहित्य मानव जगत् का सजीव चित्रण करने वाली वह सशक्त कला है जो मानव स्वप्नों और कल्पनाओं को भी रूप प्रदान करती है। इसी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है उपन्यास। आधुनिक युग में उपन्यास का विकास तीव्र गति से हो रहा है। उपन्यास ही एक ऐसा सफल माध्यम है जिसके द्वारा संपूर्ण समाज का यथावत् चित्रण कर सकते हैं।प्रेमचन्दोत्तर साहित्य परंपरा के समर्थ कथाकार यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' एक सफल उपन्यासकार, नाटककार तथा बाल साहित्य और प्रौद्योगिकी साहित्य के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनकी सृजनात्मक प्रतिभा अनोखी है....मूल्य 195/-

हिन्दी नाटकों में युवा मानसिकता

भारतीय युवा का अपना इतिहास है। उसकी मानसिकता को समझने का एक सशक्त साहित्यिक माध्यम है नाटक। प्राचीन काल से लेकर अंग्रेजों के आने तक के इतिहास से स्पष्ट होता है कि भारतीय युवा अपनी अस्मिता और व्यक्तित्व के प्रति बहुत सजग नहीं थे। परिवार में बड़ों के आज्ञा पालन में ही अपने जीवन की कृतार्थता माना उनके जीवन का लक्ष्य रहा था।.... 1857 ई. के बाद जब देश अंग्रेजी शिक्षा के सम्पर्क में असया तब से धीरे- धीरे....भारतीय युवकों को अपने अस्तित्व की सीमाओं का एहसास होने लगा। **मूल्य -295**

हिंदी काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति का स्वरूप

डॉ. हरीश चंद्र शर्मा

काव्य समीक्षा के मानदण्ड के रूप में कुंतक द्वारा प्रतिपादित वक्रोक्ति सिद्धांत का संस्कृत काव्य शास्त्रीय परंपरा में विशेष स्थान है। वक्रोक्ति शब्द का अर्थ है- टेढ़ा कथन अर्थात् चमत्कार से युक्त आकर्षण पूर्ण कथन। भारतीय काव्य शास्त्र में वक्रोक्ति शब्द का प्रयोग दो रूपों में मिलता है- 1. वक्रोक्ति अलंकार के रूप में। 2. एक काव्य शास्त्रीय सिद्धांत के रूप में।

जहाँ वक्ता द्वारा प्रयुक्त उक्ति श्लेष या काकु के आश्रय से श्रोता द्वारा अन्य अर्थ में ग्रहण की जाये वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है, परंतु काव्य समीक्षा के एक मानदण्ड के रूप में प्रतिपादन करने वाले कुंतक ने वक्रोक्ति को 'वैदग्ध्य भंगीभणिति' कहा है-अर्थात् साधारण वक्ता द्वारा साधारण भाषा के माध्यम से की गयी भावाभिव्यक्ति जब किसी विदग्ध कवि द्वारा साधारण शैली का अतिक्रमण करके अति कौशल के साथ चमत्कार उत्पन्न करते हुए की जाती है तो वहीं वक्रोक्ति की पृष्ठभूमि तैयार होती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कुंतक उस विचित्र कथन शैली को वक्रोक्ति कहते हैं जो लोक जीवन में व्यवहृत होने वाली शब्दावली से भिन्न एवं कवि प्रतिभाजन्य भंगिमाओं से युक्त सहृदय आह्लादकारी होती है। कुन्तक के उपरान्त अभिनवगुप्त, भोज, महिम भट्ट, हेमचंद्र, भयदेव, क्षेमेन्द्र आदि संस्कृत आचार्यों ने भी वक्रोक्ति सिद्धांत के विषय में अपनी मान्यताएँ प्रस्तुत की हैं, परंतु यहाँ हमारा प्रयोजन हिंदी के विद्वानों की वक्रोक्ति विषयक धारणाओं को प्रस्तुत करना है। अतः हमारा यह शोध हिंदी के विद्वानों के मध्य वक्रोक्ति विषयक मान्यताओं को ही लेकर चला है।

हिंदी काव्यशास्त्रीय विवेचन का प्रारंभ रीतिकाल से माना जाता है। रीतिकाल के आचार्यों का प्रेरणा स्रोत संस्कृत के पतनोन्मुख काल का काव्यशास्त्रीय चिंतन रहा है। इस काल के आचार्यों में नवीनता एवं गंभीरता का अभाव था क्योंकि उनका लक्ष्य तो अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा करके उनसे

पुरस्कार स्वरूप धन-स्वरूप धन-वैभव प्राप्त करना था। संस्कृत के इस द्यसोन्मुख काल में वक्रोक्ति के व्यापक रूप की प्रायः अवहेलना ही हुई परंतु कुंतक ने अपने सिद्धांत की प्रतिष्ठा प्राणभूता के रूप में की थी और प्राणतत्त्व सदैव कालजयी होता है। अतः वक्रोक्ति भी सदैव जीवित ही रहती है तथा उस पर किसी साहित्य अथवा काल विशेष का प्रतिबंध नहीं होता अपितु वह तो कवि कर्म से प्रत्येक साहित्य एवं काल में सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति करती है। हिंदी साहित्य वक्रता का अपार भण्डार है। हिंदी आलोचकों की वक्रोक्ति विषयक अवधारणाओं को दो युगों में विभक्त कर उसका अध्ययन कर सकते हैं-

(अ) रीतिकालीन आचार्य युग।

(आ) आधुनिक कालीन आचार्य युग।

(अ) रीतिकालीन आचार्य युग- रीतिकाल हिंदी काव्य शास्त्रीय आलोचना का प्रारंभिक काल माना जाता है यद्यपि इस काल के काव्य में विभिन्न काव्य तत्त्वों का सुसंयोजन हुआ जैसे-रस, अलंकार आदि। किंतु वक्रोक्ति की प्रायः अवहेलना ही की गई। इस समय तक कुन्तक का व्यापक वक्रोक्ति सिद्धांत पूर्ण रूपेण स्खलित हो चुका था तथा रूद्रट को ही वक्रोक्ति विषयक धारणा जीवित रही थी तथा उसे 'केवल वक्रोक्ति' कथन के रूप में ही ग्रहीत किया था। फलतः इस काव्य में वक्रोक्ति संकुचित अर्थ में ही रही। केशव रीतिकालीन वक्रोक्ति धारणा के सुखद अपवाद है। उन्होंने कहा है-

केशव सूधी बात में बरणत टेढ़ो भाव।

वक्रोक्ति ताको कहते सदा सवै कविराय।¹

भाव यह है कि 'जहाँ सीधे कथन में वक्र भाव व्यक्त हो वहाँ वक्रोक्ति होती है।' अतः केशव की वक्रोक्ति शब्द चमत्कार मात्र नहीं है अपितु भाव प्रेरित वक्रता है। इस पर टिप्पणी करते हुए डॉ. रमा शंकर शुक्ल रसाल ने लिखा है-"यहाँ चमत्कार का अर्थ भाव-भंगिमा में रहता है न कि

वाक चातुर्य में।”²

“अतः केशव ने वक्रोक्ति को शब्दालंकार के सीमित दायरे से पृथक् कर विदग्धता के व्यापक फलक पर देखा। इसीलिए तो केशवदास को रीति कालीन सुखद अपवाद कहा जाता है।”³ रामचंद्र शुक्ल के अनुसार-“हिंदी रीति ग्रंथों की अखण्ड परंपरा चिंतामणि त्रिपाठी से रही।” चिंतामणि त्रिपाठी कुलपति मिश्र, रसिक, सुमित, भिखारी दास, ऋषिनाथ आदि ने वक्रोक्ति को शब्दालंकार मानकर ही विवेचन प्रस्तुत किया। वक्रोक्ति को अर्थालंकार रूप में ग्रहीत करने वाले केशवदास के अतिरिक्त जसवंत सिंह, देव भूषण, मतिराम आदि आचार्य हैं। संपूर्ण रीतिकालीन वक्रोक्ति परंपरा में आचार्य गोविंददास ने ही वक्रोक्ति और ‘अर्थ वक्रोक्ति’ दो भागों में विभक्त कर इसको उभयालंकार माना है। इस प्रकार रीतिकाल के वक्रोक्ति स्वरूप विश्लेषण में किसी प्रकार की गंभीरता व मौलिकता नहीं दिखाई पड़ती परंतु केशव का वक्रोक्ति की व्यापकता की ओर इंगित करना ही रीतिकाल का अपवाद स्वरूप है।

(आ) आधुनिक कालीन आचार्य युग- आधुनिक युग में काव्यशास्त्रीय चिंतन का प्रारंभ द्विवेदी युग से ही माना जाता है क्योंकि इस युग से पूर्व हमें काव्यशास्त्रीय चिंतन के दर्शन नहीं होते। द्विवेदी युग एवं उसके परवर्ती युग समीक्षकों ने कुंतक के वक्रोक्ति सिद्धांत का अपने-अपने दृष्टिकोणों से अवलोकन किया है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी- आचार्य महावीर प्रसाद स्पष्टवादी थे तथा विवेचनात्मक पृष्ठभूमि पर काव्यत्व की सिद्धि में चमत्कार के प्रबल पक्षधर थे। चमत्कार की गरिमा के संबंध में उन्होंने लिखा है-“शिक्षित कवि की उक्तियों में चमत्कार का होना परम आवश्यक है, यदि कविता में चमत्कार नहीं, विलक्षणता नहीं तो उससे आनंद की प्राप्ति नहीं हो सकती।”⁴ आगे वे लिखते हैं-“काव्य चाहें कैसा भी हो निर्दोष क्यों न हो उसके सुवर्ण चाहे कैसे ही मनोहर क्यों न हों यदि उसमें अनमोल रत्न के समान कोई चमत्कार पूर्ण पद न हुआ, तो वह स्त्रियों के लावण्य यौवन के समान चित्त पर नहीं चढ़ता।”⁵ काव्य की परिभाषा में वह साधारणत्व को त्याज्य एवं असाधारण को ग्राह्य मानते हैं। काव्य में वैचित्र्य की प्रतिष्ठा इससे अधिक और हो भी नहीं सकती।

द्विवेदी जी ने लिखा है-“जो कवि शब्द चयन एवं काव्य विन्यास एवं वाक्य समुदाय के आकार-प्रकार की काट-छांट में भी कौशल नहीं दिखा सकते उनकी रचना विस्मृति के अंधकार में अवश्य ही विलीन हो जाती है जिसमें रचना चातुर्य तक नहीं उसका कवि यशोलिप्सा विडम्बना मात्र हैं।”⁶

पं. पद्म सिंह शर्मा- आधुनिक काल में पं. पद्म सिंह शर्मा ने अपने प्रतिमानों को कवि बिहारी लाल जी के आधार पर गढ़कर वक्रता को सर्वाधिक लोकप्रियता प्रदान की। श्रृंगारिक अध्ययन के कारण उन्हें नायिका के कथन, दर्शन, श्रवण, भाषण आदि प्रत्येक स्पन्दन की वक्रता का समुचित ज्ञान था तथा वे क्रियायें वक्रता के कारण ही सुशोभित होती हैं। यह तथ्य भी उनसे छिपा नहीं था। उस समय के काव्य में अचेतन ऐतिहासिकता का महत्त्वहीन स्वभाव उक्ति का प्रचुर प्रयोग होने के कारण समीक्षक बिहारी लाल जी आदि उच्च श्रृंगारिक कवियों की उसी आधार पर समीक्षा प्रस्तुत कर रहे थे तब ही तो उन्होंने यह संकेत दिया था-“प्राचीन काव्य वर्तमान परिष्कृत सुरुचि के आदर्श पर नहीं रचे गये उन्हें नये फीते से नहीं नापना चाहिए। प्राचीनता की दृष्टि से परखने पर ही उनकी खूबी समझ में आ सकती हैं। सतसई भी एक ऐसा ही काव्य है। बिहारी लाल जी उस प्राचीन मत के अनुयायी थे जिसमें अतिशयोक्ति शून्य काव्य चमत्कार शून्य माना गया है।”⁷ पं. पद्म सिंह शर्मा दो रूपों में वक्रोक्ति को अभिव्यक्त कर उसकी लोकप्रियता को अग्रसर करते हैं। पहले में वह निषेधात्मक रूप से तत्कालीन प्रमुख मापदण्ड, निकृष्ट स्वभाव कथन एवं नीरस अभिधावाद को अपदस्थ कर देना चाहते हैं, दूसरे में विधेयात्मक रूप में वक्रोक्ति की स्थापना करते हैं।

पं. शर्मा ने अपनी बिहारी की समीक्षा में वक्रोक्ति, वक्रता, उक्ति वैचित्र्य, चमत्कार आदि शब्दों का बाहुल्य से प्रयोग कर वक्रोक्ति का प्रबल समर्थन किया है यथा-“अन्य कवियों की अपेक्षा बिहारी ने विरह का वर्णन बड़ी विचित्रता से किया है। इनके इस वर्णन में निराला बांकापन है-कुछ विशेष वक्रता है।”⁸ इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि पद्म सिंह शर्मा ने भामह के ही वक्रोक्ति संबंधी चिंतन को कुंतक के समान सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक समीक्षा क्षेत्र में पल्लवित एवं पुष्पित किया है तथा उनके वक्रोक्ति को सुदृढ़ समर्थन मिला।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल- आचार्य शुक्ल ने पहली बार हिंदी काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों की नवीन एवं परिपक्व समालोचना प्रस्तुत की है। शुक्ल जी ने साहित्यशास्त्र के समस्त तत्त्वों को ग्रहीत कर अपने विवेचन को प्रस्तुत किया है। शुक्ल जी ने वक्रोक्ति के स्वरूप का उद्घाटन इस प्रकार किया है-“वचन की जो वक्रता भाव प्रेरित होती है वही काव्य होती है। ‘वक्रोक्ति काव्य जीवितम’ से यही वक्रता अभिप्रेत है, वक्रोक्ति अलंकार नहीं।”⁹ वक्रोक्ति के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है-“भावोद्रेक से उक्ति में एक प्रकार

का बांकापन आ जाता है, तात्पर्य कथन के सीधे मार्ग को छोड़कर वचन जो एक प्रकार की भिन्न प्रणाली ग्रहण करते हैं उसी की रमणीयता काव्य की रमणीयता के भीतर आ सकती है।¹⁰

अतः शुक्ल जी ऐसी वक्रता जो भाव से प्रेरित हो को ही काव्य का मूल मानते हैं क्योंकि भाव ही वाणी को मंजुलता प्रदान करते हैं जिससे भाषा और अधिक उज्ज्वल हो और जो काव्य में वक्रता का उन्मेष करती हो।

कुछ आलोचक आचार्य शुक्ल को कुंतक का विरोधी मानते हैं परंतु ऐसा नहीं है क्योंकि उन्होंने कुंतक के विषय में लिखा है-“कुंतक जी की वक्रोक्ति बहुत ही व्यापक है। जिसके अंतर्गत वह वाक् वैचित्र्य की वक्रता और वस्तु वैचित्र्य की वक्रता दोनों ही मिलते हैं। सालंकृत वक्रता के ही चमत्कार में वे काव्यत्व मानते हैं।¹¹ इतना अवश्य है कि आपने वक्रोक्ति को कुंतक के समान काव्य के लिए अनिवार्य न मानकर भी वक्रोक्ति चमत्कार के उपयोग का कहीं भी विरोध नहीं किया।¹²

सारांश रूप में कह सकते हैं कि शुक्ल जी वक्रता को काव्य में शोभादायक धर्म मानते हैं तथा काव्य में उसकी उपस्थिति आवश्यक मानते हैं। उन्होंने लिखा है-“भावों को गोचर एवं सजीव रूप देने के लिए भाव की विमुक्ति और स्वच्छंद गति के लिए काव्य की वक्रता अथवा वैचित्र्यत्व अत्यंत प्रयोजनीय वस्तु है, इसमें संदेह नहीं।¹³

शुक्ल जी के विवेचन, विश्लेषण से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य कुंतक एवं उनके समसामयिक आचार्यों के अतिरिक्त वक्रोक्ति का इतना विशद् एवं व्यापक विभावनात्व अन्य किसी आचार्य ने स्वीकृत नहीं किया है, परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कुंतक के उपरान्त जो वक्रोक्ति का स्वरूप क्षीण हो गया था उसे पुनः जीवित करने का सफल एवं सार्थक प्रयास अवश्य ही किया गया है।

डॉ. गुलाब राय- डॉ. गुलाब राय ने कुंतक के वक्रोक्ति सिद्धांत के विषय में लिखा है कि-“कुंतक ने वक्रोक्ति को काव्य का गुण माना है। कवि का मार्ग साधारण लोगों के मार्ग से कुछ भिन्न होता है, उसकी शब्दावली में कल्पना का पुट लगा रहता है। वह कमल को कमल न कहकर ‘सरसी के नेत्र’ कहेगा। उषा को उषा न कहकर ‘भगवान के चरणों की लाली कहेगा’ इसलिए उसने वक्रता के वैचित्र्य तथा ‘वैदग्ध्यभंगीभणिति’ अर्थात् विदग्ध लोगों के कहने का विशेष ढंग भी कहा है।¹⁴ उनके अनुसार-“वक्रोक्ति शब्द दो अर्थों में व्यवहृत होता है-एक अलंकार विशेष के रूप में और दूसरा उक्ति की वक्रता व असाधारणता के रूप में।¹⁵ उन्होंने पुनः

लिखा है- “क्रोंचे ने उक्ति को प्रधानता दी है, उक्ति वैचित्र्य को नहीं, उसके मत से सफल अभिव्यक्ति या केवल अभिव्यक्ति कला या सौंदर्य है” इसलिए ही अभिव्यंजनावाद एवम् वक्रोक्तिवाद की समानता नहीं है।¹⁶ उन्होंने आगे लिखा है-“अभिव्यंजनावाद में स्वभावाक्ति एवं वक्रोक्ति या भेद नहीं है। उक्ति केवल एक ही प्रकार की हो सकती है यदि पूर्ण अभिव्यक्ति वक्रोक्ति द्वारा होती है तो वही स्वाभावाक्ति या उक्ति है वही कला है। वाग्वैचित्र्य का मान वैचित्र्य के कारण नहीं, अपितु यदि है तो पूर्ण अभिव्यक्ति के कारण। अभिव्यंजनावाद में एक ही उक्ति के लिए स्थान है न उसमें अप्रस्तुत का, न स्वभावाक्ति वक्रोक्ति का भेद है।¹⁷

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि डॉ. गुलाब राय आचार्य कुंतक के वक्रोक्ति सिद्धांत के पूर्ण समर्थक हैं। आपने काव्य चमत्कार को वक्रोक्ति का ही रूप माना है। जो इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि “वक्रता का अर्थ एक प्रकार का सौंदर्य है।¹⁸

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी- यद्यपि आचार्य द्विवेदी ने वक्रोक्ति सिद्धांत की कोई पृथक् स्वतंत्र विवेचना प्रस्तुत नहीं की है। उन्होंने अपने ग्रंथ ‘प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद’ में उक्ति वैचित्र्य शब्द का प्रयोग कर वक्रोक्ति के प्रति अपने लगाव को स्पष्ट किया है। कुंतक की वक्रोक्ति की समीक्षा उन्होंने इस प्रकार से की है-“केवल शब्दों में भी कवित्व नहीं होता और केवल अर्थ में भी नहीं। शब्द व अर्थ दोनों के... ..में अर्थात् एक साथ मिलकर भाव प्रकाश करने के सामंजस्य में काव्यत्व होता है.....एक दूसरे को छोड़कर रह ही नहीं सकते, फिर शब्द और अर्थ के साहित्य में काव्य होता है ऐसा कहना क्या बेकार का प्रलाप मात्र नहीं है? कुंतक जवाब देते हैं कि यही तीव्र वक्रोक्ति का चमत्कार है। काव्य में शब्द और अर्थ के साहित्य में काव्य होता है ऐसा कहना क्या बेकार का प्रलाप मात्र नहीं है? कुंतक जवाब देते हैं कि यही तीव्र वक्रोक्ति का चमत्कार है। काव्य में शब्द और अर्थ के साहित्य में एक विशिष्टता होनी चाहिए।¹⁹

इस प्रकार कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी ने वक्रोक्ति को औचित्य में ही समेट कर वक्रोक्तिजन्य काव्य के स्वरूप का आंकलन प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने आचार्य शुक्ल जी के साथ मिलकर वक्रोक्ति की परंपरा को आगे बढ़ाने में भी अपना पूर्ण सहयोग दिया है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय- आचार्य बलदेव जी ने सर्वप्रथम कुंतक के वक्रोक्ति सिद्धांत के प्रति आदर भाव प्रकट करते हुए उसका व्यापक एवं प्रमाणित विश्लेषण प्रस्तुत किया है। कुंतक के विषय में वे कहते हैं कि-“कुंतक के उद्भावित

तथ्य की अवहेलना कदापि नहीं की जा सकती। उनकी आलोचना शक्ति इतनी तलस्पर्शी है, लेखन शैली इतनी मार्मिक है, हृदय इतना रस पेशल है, बुद्धि इतनी विषम ग्राहिणी है कि हम उनकी गणना भारत के महिमामय मान्य आलोचकों की श्रेणी में करने से पराङ्मुख नहीं हो सकते हैं।²⁰ इस प्रकार स्पष्ट है कि आचार्य उपाध्याय ने आचार्य कुंतक को गरिमा के सिंहासन पर आसीन कर दिया है। उपध्याय जी ने वक्रोक्ति के स्वरूप और उसके इतिहास के भेद-प्रभेद का सूक्ष्मता से अध्ययन किया है।

हिंदी साहित्य शास्त्र में शुक्ल जी के उपरांत बलदेव उपाध्याय ने ही वक्रोक्ति का सांगोपांग निरूपण कर उसके विराट स्वरूप की मीमांसा प्रस्तुत की है। उपाध्याय जी के अनुसार-“वक्रोक्ति काव्य का नितांत व्यापक रुचि तथा सुगूढ़ तत्त्व है, जिसके अस्तित्व के ऊपर कविता में चमत्कृति का संचार होता है।...बालरुचि वाले कवियों को पसंद आने वाले चमत्कार के वे पक्षपाती नहीं हैं, प्रत्युत वे रस को काव्य का मुख्य अर्थ मानने वाले आचार्य हैं।²¹ अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि उपाध्याय जी हिंदी साहित्यशास्त्र में वक्रोक्ति की उपस्थिति के पूर्ण पक्षधर हैं।

राम नरेश वर्मा-राम नरेश वर्मा अपने ‘वक्रोक्ति एवं अभिव्यंजना’ के द्वारा वक्रोक्ति का मार्ग प्रशस्त करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने अपने प्रबंध में कुंतक की प्रशंसा करते हुए लिखा है-“कुंतक ने काव्य के विभिन्न उपादानों को नवीन रूप में सज्जित करने का अद्भुत प्रयत्न किया है। वे केवल काव्य के कला पक्ष पर ही ध्यान देने वाले आचार्य नहीं हैं। उन्होंने काव्य के भाव पक्ष का भी समुचित सन्निवेश अपनी विवेचना में किया है। इसी से कुंतक के वक्रोक्ति ‘भाव वैचित्र्य’ मात्र नहीं प्रत्युत काव्य का व्यापक एवं निगूढ़ तत्त्व है वह रस सिद्ध कविवरों की वाणी की विवेचना का सतुल्य प्रयास है।²²

डॉ. नगेंद्र- डॉ. नगेंद्र जी आधुनिक हिंदी साहित्य शास्त्र के समालोचकों की श्रेणी में अग्रगण्य माने जाते हैं। वे हिंदी जगत में वक्रोक्ति के व्याख्या एवं पृष्ठ पोषक हैं। डॉ. नगेंद्र ने अपने काव्य ग्रंथ ‘रीतिकाव्य की भूमिका’ एवं ‘भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका’ में कुंतक के सिद्धांत संबंधी चिंतन को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने ‘रीतिकाव्य की भूमिका’ में वक्रोक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है-“कुंतक विचित्र विन्यास क्रम को वक्रोक्ति मानते हैं जो एक ओर शास्त्रादि में प्रयुक्त इतिवृत्तात्मक शब्द और अर्थ के उपनिबंध से भिन्न अथवा विशिष्ट होता है और दूसरी ओर व्यवहारगत साधारण भाषा प्रयोग हो, इसलिए उन्होंने

‘वैदिग्ध्यभंगीभणिति’ कहा है। वैदिग्ध्य का प्रयोग विद्वता से भिन्न काव्यनैपुण्य के अर्थ में बहुत पहले से भी ध्वनि सिद्धांत के अंतर्गत नहीं हुआ।.....कुंतक ने काव्य में सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों को लेकर अधिक व्यापक तत्त्व का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत करके भारतीय सौंदर्यशास्त्र में एक नवीन पद्धति का उद्घाटन किया है।²³

लक्ष्मी नारायण सुधांशु- सुधांशु जी ने काव्यशास्त्रीय विश्लेषण में वक्रोक्ति एवं अभिव्यंजना की पुनर्व्याख्या की है। इन्होंने लिखा है-“कुंतक का सिद्धांत भामह से विकसित हुआ है और उसके मूल में अलंकारों का कल्पना वैचित्र्य है।” कुंतक के विचार को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है-“कुंतक का प्रधान अभिप्राय यह है कि वक्रोक्ति काव्य का प्राण है। वक्रोक्ति से वे काव्य में ऐसे विचित्र विन्यास क्रम की स्थापना करना उचित समझते हैं जो अभिव्यंजना के साधारण इतिवृत्तात्मक ढंग से भिन्न हो।²⁴ इन्होंने वक्रोक्ति एवं अभिव्यंजना में स्वाभाविक अंतर मानते हुए लिखा है (अ) “वक्रोक्ति और अलंकार का घनिष्ठ संबंध है किंतु अभिव्यंजनावाद का अलंकार से कोई स्वतंत्र संबंध नहीं है।²⁵ (आ) अभिव्यंजनावाद में स्वाभावोक्ति का भी मान है वक्रोक्ति सिद्धांत में नहीं।²⁶ सुधांशु जी का विवेचन सूक्ष्म होने के साथ-साथ शास्त्रीय दृष्टि से भी श्रेष्ठ एवं मान्य है।

आचार्य नंददुलारे बाजपेयी- बाजपेयी जी ने भारतीय काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए कुंतक की वक्रोक्ति के संबंध में कहा है-“अभिव्यंजना की रोमांचकता कुंतक की वक्रोक्ति है, रस को भी वक्रोक्ति का ही स्वरूप स्वीकार किया है।”

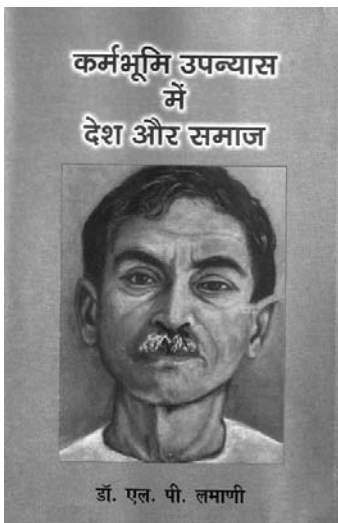
इन उपर्युक्त विचारकों के अतिरिक्त डॉ. गणपति चंद्र गुप्त, त्रिगुणायत, डॉ. भागीरथ मिश्र आदि ने भी वक्रोक्ति पर आनुषांगिक रूप से विचार किया है, परंतु उनके विचारों में मौलिकता को सर्वथा अभाव रहा है। साहित्यिक दृष्टि से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि आधुनिक काल परिवर्तनशील काल है। इस परिवर्तित काल में कवियों ने भी आलोचना के क्षेत्र में प्रवेश कर लिया जिसके फलस्वरूप उनको समीक्षात्मक दृष्टि से पूर्ण सफलता मिली। इन नवीन समीक्षकों ने प्राचीन काव्य मूल्य को नवीन दृष्टि प्रदान करने के अतिरिक्त आलोचना के क्षेत्र पर भी नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है। यही कारण है कि पुरातन काव्य मूल्यों ने नवीन शरीर धारण करने वाले ग्रंथों का आश्रय ग्रहण किया है। तब ही इस काल के कवि का आकर्षण कुंतक की वक्रता पर भी बढ़ा है। इसलिए ही व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक रूप से इसकी पूर्ण मार्मिक एवं प्रौढ़ प्रतिष्ठा हुई है। इस दृष्टि से जयशंकर ‘प्रसाद’, सूर्यकांत

त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर', सच्चिदानंद हीरानंद वात्साययन 'अज्ञेय' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने कुंतक की वक्रोक्ति को हृदय से पहचान कर उसे ग्रहीत किया।

संदर्भ-

1. आचार्य केशवदास, प्रिया प्रकाश /2/3।
2. रमाशंकर शुक्ल रसाल, अलंकार पीयूष, उत्तराखण्ड, पृ. 59
3. डॉ. विजेंद्र नारायण सिंह, वक्रोक्ति सिद्धांत एवं छायावाद, पृ. 55
4. महावीर प्रसाद द्विवेदी, रसज्ञ-रंजन, पृ.39
5. वही, पृ. 39
6. महावीर प्रसाद द्विवेदी, संचयन, पृ. 100
7. पं. पद्म सिंह शर्मा, बिहारी सतसई: तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 160
8. वही, पृ. 120
9. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, भ्रमरगीत सार, भूमिका, पृ. 71
10. वही, पृ. 71
11. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि, भाग-1, पृ. 138
12. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 118
13. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि
14. डॉ. गुलाब राय, सिद्धांत और अध्ययन, पृ. 11
15. वही, पृ. 35
16. वही, पृ. 266
17. वही, पृ. 267
18. वही, पृ. 232
19. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ. 147
20. आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय साहित्य शास्त्र (भाग-2), पृ. 35
21. वही, पृ. 35
22. राम नरेश वर्मा, वक्रोक्ति एवं अभिव्यंजनावाद, पृ. 108
23. डॉ. नगेंद्र, भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ. 349
24. लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु', काव्य में अभिव्यंजनावाद, पृ. 22
25. वही, पृ. 75
26. वही, पृ. 75

प्रधानाध्यापक, आदर्श हायर सैकेण्ड्री स्कूल खटाना, गौतमबुद्ध नगर



'कर्मभूमि' उपन्यास में देश और समाज

प्रेमचंद के सामाजिक संघर्षों को एक क्रांतिकारी दिशा देती हुई प्रस्तुत रचना 'कर्मभूमि' देश और समाज के लिए एक आदर्शवादी तथा यथार्थवादी प्रेरणा स्रोत के रूप में रची गई अनोखी रचना है। उनका सृजन ग्रामीण और शहरी संस्कृति और आँचलिकता से रंगा हुआ है। लेखक ने यथार्थ और अपने अनुभव के आधार पर सामन्तवाद, पूँजीवाद, नारीवाद, मानवीय अधिकार आदि पर अपनी लेखनी चलाई है। ...प्रेमचंद ने अपने लेखन में मजदूरों, किसानों, अछूत वर्ग के शोषण, प्रताड़ना पर गहरा आक्षेप किया है। उन्होंने नारी के विविध रूपों का आकलन किया है। नारी जीवन और उसकी सामाजिक स्थिति में आये परिवर्तन पर विचार प्रस्तुत किया है। नारी जीवन और उससे जुड़ी अनगिनत, असंगतियों, विसंगतियों तथा विडम्बनाओं आदि का अंकन किया है। मूल्य 160/-

मैथिलीशरण गुप्त की 'द्वापर' काव्य में विधृता चरित्र का अनुशीलन

डॉ. टी. श्रीनिवासुलु

विधृता का अर्थ होता है-रोकना। अतः विधृता शब्द का अर्थ हुआ ऐसी स्त्री जिसे रोक लिया गया हो। गुप्तजी के काव्य द्वापर में यह नाम एक याज्ञित की पत्नी का नाम है। द्वापर के निवेदन में गुप्तजी ने स्वयं कहते हैं- श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के तेईसवें अध्याय में एक कथा है-तत्रैका विधृता भर्ता भगवंत यथा श्रुनत्र/हदोपगुह्य विजहो देहं कर्मानुबंधनमाः।¹

एक ब्राह्मण ने बलपूर्वक अपनी वनिता को रोक लिया। नैवेध्य समर्पण तो दूर, वह भगवत के दर्शन भी न पा सकी। इस दुःख से उसने शरीर त्याग दिया। खेद है, इस विधृता का नाम नहीं मिला। अतएव इसके संबंध की रचना का यही शीर्षक देना पड़ा।

वह परहित चिंतन की भावना से प्रेरित होकर बालकृष्ण को नैवेध्य समर्पित करने जाती है। वह श्रीकृष्ण के प्रति आत्म समर्पित है। विधृता का स्वभाव उदारता एवं मानवता की पुष्टि में चित्रित किया गया है। गुप्तजी की विधृता का चित्रण पूर्णतः स्वाभाविक लगता है। गुप्तजी ने नारी जाति में परस्पर सहायक होने की भावना विधृता में अभिव्यक्त की है।

विधृता के माध्यम से पुरुष प्रधान भारतीय समाज की प्रताड़ित एवं अपमानित नारी की मर्म वेदना को गुप्त ने सफलता से अभिव्यंजित कर पाये। विधृता भारतीय आदर्श गृहिणी है। दान करना अपना धर्म मानती है। घर पर आया हुआ अतिथि उसके लिए देवता के समान है। वह एक ममतामयी नारी भी है। उसमें बाल कृष्ण के प्रति ममता जाग उठती है। वह भारतीय संस्कृति का पालन करना चाहती है। अतिथियों का अपमान उसके लिए असह्य है। आधुनिक समाज में अतिथि का यह अनादर ठीक नहीं है। यही भावना विधृता के कथन में दीख पड़ता है-जहाँ अतिथि हों आप देवता, धर्म तुम्हारे धर आया था, अपने कर फैलाये, पर भूखे ने भरम गमाया, फिर भी धक्के खाये।²

भारतीय नारी का सर्वमान्य आदर्श सतीत्व है। पति सेवा,

पति की आज्ञा का पालन ही उसका सम्बल है। सुसंस्कारों की रक्षा, समष्टि का कल्याण और सद्भावों का पोषण स्वयं पति ही न कर रहा हो, तो उसके विरुद्ध कदम उठाने में भारतीय नारी को कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन विधृता अनुपम मानिनी एवं पतिव्रता है। वह अपने पति से कुण्ठाग्रस्त होती हुई भी सती मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती।

विधृता घर में आये किसी भी विपत्ति को धैर्य के साथ सामना करती है। वह दृढ़ चिंता होकर कर्तव्य पालन करती है। भारतीय नारी मृदु एवं कोमल ही नहीं कर्तव्य पालन के समय कठोर भी बन जाती है। दूसरों के प्रति सहानुभूति होने के कारण सदैव मिलनसार तथा सहायिका के रूप में उपस्थित होती है।

पत्नी के प्रति पति के कर्तव्य को याद दिलवाती है। पाणिग्रह का तात्पर्य पर प्रश्नार्थ लगाती है-नर, झकझोर डालने को ही क्या यह कर पकड़ा था?³ पुरुष की काम वासनाओं को वह धैर्य से खण्डन करती है। स्त्री सिर्फ काम प्रवृत्ति के प्रतिरूप नहीं मानते हुए-कामुक-चाटुकारिता का खण्डन करती है।

पुरुष स्त्री के प्रति सिर्फ शृंगार रस ही आरोप करता है। क्या घर आये वधू में काम वासना को ही देख पाता है हाय। वधूने क्या वर विषयक एक वासना पाई।⁴ क्या नर जाति नारी के नग्न मूर्ति के प्रति ही अभिलाषी होगी? पुरुष स्त्री के प्रति कामासक्ता रहता है, लेकिन स्त्री के विविध आयाम होते हैं, उन सब को छोड़कर केवल माँसल शरीर से आकर्षित होना पशुतुल्य है। जाया हो कर जननी भी होती है नारी। विधृता वासनामय प्रवृत्ति को श्रोष्ठ नहीं मानती है। वासना के अतिरिक्त वह बंधु बहन, पिता आदि संबंधों को अधिक महत्त्व देती है। वासना प्रवृत्ति पशु प्रवृत्ति मानी जाती है। नर की इस प्रवृत्ति के कारण वह निरंतर नारी का नग्न रूप ही देखता है। नारी माँ, बेटी, बहन आदि रूपों में भी विचरत है-नर के बाँटे क्या नारी की नग्न-मूर्ति ही आई/माँ बेटी या

बहिन हाय क्या संग नहीं वह लाई?"⁵

पुरुष के लिए वह माता, बहिन, बेटी आदि और भी दायित्व निभाती है। नर के जीवन में पग-पग पर वह माता बनकर उत्कृष्ट जीवन प्रदान करती है। बहन बनकर अनेक मधुर अनुभूतियों के साथ रहती है। बेटी बनकर जीवन के अंतिम चरण में सहारा देती है। विधृता अपने पति से यही प्रश्न करती है। पशुतुल्य पुरुष समाज में स्त्री के प्रति अन्याय करते जा रहे हैं। असहनीय व्यथा दे रहे हैं। जिस स्वर्ग की कामना करते हैं वह भी एक वासनामय विचार ही है। सुरांगनाओं की नृत्य आदि भोग लालसा स्वर्ग की अंकुर करवाती है। पुरुष स्त्री संगति के लिए ही क्या तप कर स्वर्ग जाना है? क्या पुरुष स्वर्ग लोलुपता में रमता जा रहा है?

विषय वांछाओं का केंद्र नारी बनायी गई है। यह अत्यंत हेय है। विधृता इसलिए धिक्की करती है। विधृता पति के निष्ठुर व्यवहार से विचलित होती है। पति पत्नी दोनों परिवारों में समान मानती है नारी को दासी समझना दूषित प्रथा मानती है। नारी के प्रति सदियों से अविश्वास और अनादर दिखा रहे हैं। क्या नारी भोग वस्तु है, कुलस्त्रियों के प्रति भी नर अश्लील रहेगा, लेकिन उसे सुशील समझा जाना समाज की रीति बनी है। नर के सौ दोष क्षमा है। परंतु स्त्री की एक दोष से भी नारी को अपवित्र मानी जाती है। जैसे अहिल्या की हुई है। इन्द्र क्षमा पात्र बन जाता है लेकिन अहिल्या कुलठा मानी जाती है।

विधृता पुरुष के साथ समान अधिकार के लिए नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है।लेकिन सदियों से नारी की अपमान करते जा रहे हैं। स्त्री पुरुष की दृष्टि में वासना के प्रतिरूप होती है। पुरुष की हवस न मिटाने पर ललना-छलना मानी जाती है।

गुप्तजी यहाँ भारतीय आदर्श नारी सुलभ गुणों के ध्यान में रखते हुए मानते हैं कि नारी अपनी महानता एवं शालीनता के कारण उदात्त गुणों में एवं व्याकरण के गुणों में भी दो-दो मात्राएँ भारी है। एक-एक नहीं दो-दो मात्राएँ नर से भारी नारी।⁶ विधृता स्त्री जाति के प्रतिनिधि बनकर क्षमामय व्यवहार करती है। विधृता यहाँ साधारण नारी से ऊपर उठकर अपने विशाल हृदय एवं ममता का परिचय देती है।

द्वापर की विधृता स्वाभिमानी नारी है। मानिनी विधृता का स्वाभिमान चरम सीमा पर तब पहुँच जाता है। जब पति अपने प्रति अविश्वास प्रकट करता है। कठिनावस्था में भी विधृता अपना मानिनी स्वभाव नहीं त्यागती है। सत्य के लिए वह निरंतर प्रयत्नशील है और समस्त संसार को बता देना चाहती है कि नारी जाति कितनी स्वाभिनिष्ठ है। वह परिवार में नारी

को अर्धांगिनी का स्थान उचित मानती है। वह मानती है कि घर में नर और नारी समान अधिकार के भागीदार है। विधृता में अन्याय के प्रति विरोध करने की चेतना है। नर के अत्याचारों से पीड़ित नारी जाति का उदार करना चाहती है। वह अपने जाति के प्रतिनिधि बनकर समाज से प्रश्न करती है। वह मानती है कि युग-युगीन नारी जाति की मनोव्यथा दूर होने का एक मात्र उपाय नारी पुनर्जागरण ही है। पुनर्जागरण से ही नर जाति में परिवर्तन संभव है।

विधृता वेदों पर विश्वास एवं श्रद्धा रखती है, लेकिन वह अंधविश्वासी बनकर उसका अनुसरण नहीं करती है। वह यज्ञ यागादि में बलि देने से मना करती हैं। गुप्तजी भारतीय पुरुष का अनुपालन करने वाले कवि हैं, लेकिन वे अंधविश्वासी बनकर उसका अनुसरण नहीं करते हैं। विधृता के चरित्र में गाँधीवाद से समंचित अहिंसा परिलक्षित है-जिनमें पशुवध करते-करते/सूखा हृदय तुम्हारा,/कर्म हमारा क्षमता-मय हो,/धर्म सुममतामय हो।⁷

उसे स्त्री की दास्यता स्वीकार्य नहीं है। विधृता क्रांतिकारी विचारधारा के प्रतिनिधि नारी है-हम-तुम-पति-पत्नी थे दोनों, मुठ्ठी भर जो न दे सके, दासी थी, मैं आहा। कुछ भी स्वत्व नहीं रखती क्या अर्धांगिनी तुम्हारी।⁸

नर के इस व्यक्तित्व का कारण नारी ही है संशयी नर का उत्तरदायित्व के लिए नारी को ही बाध्य मानती है। वह नारी जाति को चेतावनी देती है कि-इस अविश्वासी को जन्म देने वाली तुम्हीं हो, उसमें परिवर्तन लाने का उत्तरदायित्व भी तुम पर ही है। भारतीय नारी का सर्वमान्य आदर्श सतीत्व है। पति सेवा, पति की आज्ञा का पालन ही उसका सम्बल है। सुसंस्कार की रक्षा समष्टि का कल्याण और सदभावों का पोषण स्वयं पति ही न कर रहा हो तो विरूद्ध कदम उठाने में भारतीय नारी को आपत्ति नहीं है, लेकिन विधृता अनुपम मानिनी एवं पतिव्रत है। वह अपने पति से कुण्ठाग्रस्त होती हुई भी सती मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती है।

गुप्तजी उपेक्षित नारियों के प्रति श्रद्धा प्रकट कर पात्रों पर छाए साहित्यिक अंधकार को मिटा कर अपनी अनुपम कृतियों द्वारा सुप्रभात लाने में सफल हुए हैं।

संदर्भ-

1. मैथिलीशरण गुप्त, द्वापर, निवेदन
2. वही, द्वापर, पृ. 27
3. वही, पृ. 26
4. वही, पृ. 30
5. वही, पृ. 30
6. वही, पृ. 26
7. वही, पृ. 29
8. वही, पृ. 26

प्राचार्य, यस.वी. स्नातक विद्यालय, अनंतपुरमु

आचार्य रामविलास शर्मा की समीक्षा शैली

डॉ. प्रदीप कुमार भारती

आचार्य रामविलास शर्मा की समीक्षा शैली हिंदी में मार्क्सवादी प्रगतिवादी विचारधारा के एक मुख्य प्रवक्ता के रूप में आरंभ होती है, पर क्रमशः उनके लेखन में 'वाद' का आग्रह हल्का होता चला जाता है और विवेचन प्रधान हो जाता है। ऐसा नहीं है कि रामविलास शर्मा के पहले मार्क्सवादी आलोचना का विकास नहीं हुआ था। उनसे पहले शिवदान सिंह चौहान 'हंस' के संपादक के रूप में मार्क्सवाद के सैद्धांतिक पक्ष पर बहुत कुछ लिख चुके थे। प्रकाश चंद गुप्त भी इस संबंध में अपना विचार व्यक्त करते आ रहे थे। शुरू में प्रकाश चंद गुप्त की आलोचना प्रगतिवादी साहित्य में व्यापक प्रगतिशील चेतना का उन्मेष लेकर पैदा हुआ था, लेकिन बाद में उनका आशय कम्युनिस्ट पार्टी की नीतियों का घोषणा पत्र जैसे लगने लगता है। मार्क्सवादी साहित्यकार केवल उसी साहित्य को अच्छा मानते हैं, जिसमें सर्वहारा वर्ग के संघर्ष का चित्रण होता हो तथा पार्टी की नीतियों के आधार पर जनता से सशस्त्र क्रांति की बात की गई हो। इस संकीर्ण आलोचना का विरोध भी हुआ है। साहित्यकारों ने इस मानसिकता से धीरे-धीरे मुक्त होने का प्रयास भी किया है। उसी के बाद डॉ. रामविलास शर्मा का हिंदी आलोचना में प्रादुर्भाव होता है।

जहाँ तक डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना की बात है तो वे मार्क्सवादी आलोचक होने के नाते साहित्य में सर्वहारा वर्ग के चित्रण पर बल तो देते हैं, लेकिन उनकी दृष्टि उन संकीर्ण वैषम्य से पीड़ित जनता भी है। डॉ. रामविलास शर्मा एक सफल आलोचक हैं। उनमें ऐसे गुण होते हैं, जो उन्हें सफलता प्रदान करते हैं-वे गुण हैं विद्वता, भाषाधिकार, प्रामाणिक बात करने की आदत, वैज्ञानिक दृष्टि और निष्पक्षता। निष्पक्षता के गुण ने जहाँ एक ओर उन्हें किसी की भी बेहिचक आलोचना कराई है, वहीं दूसरी ओर छोटे-छोटे लेखकों का यथोचित सम्मान भी दिया है। प्रायः यह देखा गया है कि जाने-माने आलोचक नवोदित साहित्यकारों की उपेक्षा करते हैं किंतु शर्मा जी किसी भी नये रचनाकार का

उद्धरण बड़ी उदारता से अपनी रचना में दे देते हैं। उनकी निष्पक्षता का उदाहरण इस प्रकार देखा जा सकता है कि सुमित्रानंदन पंत, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल आदि को भी वे नहीं छोड़ते पर नये रचनाकारों की सराहना भी करते हैं। इन्हीं कारणों को ध्यान में रखकर डॉ. बच्चन सिंह ने इनके बारे में लिखा है कि- "रामविलास शर्मा की दृष्टि सबसे अधिक पैनी, स्वच्छ और तलस्पर्शी है। विचारों के स्तर पर वे कही भी समझौतावादी नहीं होते। वे बहुत ही खरे दो टूक बात कहने वाले निर्भीक आलोचक हैं।" (डॉ. राजकिशोर सिंह, साहित्यलोचन, पृ. 309)

डॉ. रामविलास शर्मा की समीक्षा शैली की प्रमुख विशेषता है उनका व्यंग्य करना। डॉ. शर्मा व्यंग्य करने में कही भी नहीं हिचकते चाहे वह कितना भी बड़ा रचनाकार क्यों न हो, डॉ. नगेन्द्र की पुस्तक 'विचार और अनुभूति' पर वे व्यंग्य करते हुए लिखते हैं कि- "नगेन्द्र जी के विचार उन्हें एक कदम आगे ढकेलते हैं, तो उनकी अनुभूति उन्हें चार कदम पीछे घसीट ले जाती है। इस पुस्तक का नाम एक कदम आगे और चार कदम पीछे भी हो सकता था।" (वही, पृ. 310), एक दूसरे उदाहरण के द्वारा भी हम देख सकते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा को आचार्य रामचंद्र शुक्ल का समर्थक माना जा सकता है, उन्होंने शुक्ल जी के ऊपर एक पुस्तक 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना' भी लिखी है, पर जब आलोचना की बात आती है तो वे उनसे असहमत भी दिखाई पड़ते हैं। "छायावाद के प्रति शुक्ल जी के नकारात्मक दृष्टिकोण के वे समर्थक नहीं हैं, यद्यपि वे मानते हैं कि उनका नकारात्मक दृष्टिकोण अपनी जगह पर सही है, पर इस पक्ष पर सरसरी निगाह डालते हुए वे छायावाद के सकारात्मक पक्ष यानी उसके क्रांतिकारी और वर्ग-संघर्ष वाले पहलू पर तेज रोशनी डालते हैं।" (डॉ. बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 389)

आचार्य रामविलास शर्मा की एक खास विशेषता यह है

कि वे हर नये का समर्थन एवं पुराने का विरोध नहीं करते है, वे उन मार्क्सवादी आलोचकों पर आरोप भी लगाते हैं, जिन्होंने तुलसीदास की पंक्तियाँ खोज-खोज कर उनको प्रतिक्रियावादी, वर्णाश्रम के समर्थक, 'हिंदू धर्म के पोषक और ब्राह्मणवादी आदि कहते हैं। वे लिखते हैं कि "जो लोग समझते हैं कि तुलसीदास शूद्रों पर ब्राह्मणों के प्रभुत्व का समर्थन करते थे, वे भूल जाते हैं कि उन्होंने स्वयं इस प्रभुत्व का कटु अनुभव किया था। कवितावली के छंदों में महाकवि का एक निडर व्यक्तित्व उभर कर हमारे सामने आता है जो राम भक्ति का प्रचार करता हुआ वर्णवादियों के विरोध में जरा भी परवाह नहीं करता। समूचा तुलसी-साहित्य इस चित्र की सत्यता प्रमाणित करता है।" (रामविलास शर्मा, परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 77) वे आगे लिखते हैं कि-"तुलसीदास स्वयं उन लोगों में से थे जिन पर जातिहीनता और अकुलीनता का आक्षेप किया जाता था। उन्होंने बड़ाई पाने के लिए पुरोहित वर्ग का खुशामद नहीं की, स्वयं कुलीन बनकर पैर नहीं पुजाये। उन्होंने समाज के इतर जनों का पक्ष लिया और राम के प्रेम के आधार पर उसकी समानता की घोषणा की। उनकी भक्ति का यह सामंत विरोधी मूल्य है, जिसे अपनाना चाहिए और समाज में ऊँच-नीच का भेद आभीर, जवन, किरात, खस, स्वपादि का भेद सदा के लिए खत्म कर देना चाहिए।" (वही, पृ. 80) वे अपनी पुस्तक 'संस्कृति और साहित्य' की भूमिका में लिखते हैं कि-"यह अत्यंत आवश्यक है कि हम अपने साहित्य की पुरानी परंपराओं से परिचित हो, परिचित होने के साथ-साथ हमें उनके श्रेष्ठ तत्त्वों को भी ग्रहण करना चाहिए।"

डॉ. रामविलास शर्मा की समीक्षा शैली की एक खास विशेषता है कि उसमें उदाहरण विद्यमान रहते हैं। इससे आलोचना में बल आ जाता है। उन्होंने जब महापंडित राहुल सांकृत्यायन की विचारधारा की आलोचना की थी तब साहित्य में जैसे भूचाल-सा आ गया था, किंतु उन्होंने प्रमाण देकर अपनी बात कही थी, इसलिए आने वाले तूफान से वे अप्रभावित रहे। स्वयं उनकी आलोचना अमृतराय ने जब 'हंस' में की थी, तो उन्होंने यहीं कहा कि आप प्रमाण दीजिए, बिना प्रमाण दिए मैं आपके किसी आरोप पर गंभीरता से विचार नहीं करूँगा। रामविलास शर्मा साम्राज्यवाद, पूँजीवाद के कट्टर विरोधी थे। इसलिए अगर कोई भी रचना में उनकी थोड़ी-सी भी झलक दिखाई पड़ती है तो वे उसकी आलोचना करने से नहीं हिचकते। वे उसे देश का शत्रु मानते हैं। उनका मानना है कि-"जो पूँजीवाद या साम्राज्यवाद की खुशामद करें, उन्हें स्थायी बनाने में मदद करे, प्रगति के मार्ग पर काँटे बिछाए, वह देश का शत्रु है, धर्म और संस्कृति के नाम पर

जनता का गला घोट कर पूँजीवाद के दानव को मोटा करना चाहते हैं, उनसे सभी लेखकों और पाठकों को सावधान...।" (साहित्यलोचन, पृ. 311)

आचार्य रामविलास शर्मा का साहित्य के जिन क्षेत्रों में ज्यादा मन लगता है, वह है-संत साहित्य, भारतेन्दु युग, छायावाद, प्रेमचंद, निराला। इन लोगों पर शर्मा जी ने अपने सुलझे हुए विचार व्यक्त किए हैं। संत कवियों के बारे में वे लिखते हैं कि-"सदियों से सामंती शासन के शिला के नीचे जन साधारण की सहृदयता का जल सिमट रहा था, संत कवियों की वाणी के रूप में वह अचानक फूट पड़ा और उसने समूचे भारत को सिक्त कर दिया।" (साहित्यलोचन, पृ. 311) डॉ. शर्मा संत साहित्य के बारे में आगे लिखते हैं-"गाँव के किसानों को आए दिन व्यवहार में तुलसी, रहीम, सूर, गिरधर की उक्तियाँ उद्धृत करते हुए सुनिए तो पता चलेगा कि वे साहित्यकारों के शब्दों को वे किस प्रकार अपने जीवन में परखते चलते हैं। जो साहित्य इस तरह अपने जीवन में घुल-मिल जाता है, वहीं टिकाऊ होता है, दूसरा नहीं।" (वही, पृ. 312) संत साहित्य में भी तुलसीदास शर्मा जी के प्रिय कवि हैं। वह कोई भी लेखन आचार्य शर्मा जी को पसंद नहीं हैं जो गोस्वामी तुलसीदास के खिलाफ जाता हो। जिन लोगों ने तुलसीदास को हिंदू धर्म के रक्षक, स्त्री के प्रति खराब रवैया अपनाने वाला कहा है, उनका जवाब देते हुए उन्होंने कहा है कि-"जो लोग समझते हैं कि तुलसीदास ने इस्लाम धर्म से हिंदू-धर्म की रक्षा की वे कृपा कर उन पंक्ति पर विचार करें जिनमें महाकवि ने माँग कर खाने और मस्जिद में सोने की बात कही है। वर्ण व्यवस्था के रक्षकों ने ही भारतीय जनता के हृदय सम्राट की यह दशा की थी।" (परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 77-78), स्त्रियों के प्रति रवैया के बारे में उठे विवाद का जवाब देते हुए शर्मा जी लिखते हैं कि-"पुरोहित वर्ग ने जो व्यवहार नीची जातियों के साथ किया था, वही व्यवहार उसने स्त्रियों के साथ किया था। उपासना और उच्च शिक्षा के उन्हें वंचित किया गया था। उनके लिए एक ही धर्म था, पति की सेवा करे। तुलसीदास ने स्त्रियों के लिए उपासना का द्वार खोल दिया। राम से मिलने, उनका स्वागत सत्कार करने, स्नेह पाने में स्त्रियों सबसे आगे रहती है। चाहे जनकपुर हो, चाहे अयोध्या हो, चाहे चित्रकूट का मार्ग हो, हर जगह इनकी भीड़-की-भीड़ दिखाई देती है।" (वही, पृ. 80) इतना ही नहीं तुलसी की भक्ति-काव्य के बारे में अपने एक साक्षात्कार में रामविलास शर्मा कहते हैं कि-"तुलसीदास से बड़ा कोई भक्त पैदा नहीं हुआ" 'भोरे मन अस दृढ़ विश्वास, राम से अधिक राम करत दासा।' जो राम का भक्त है वह राम से भी बड़ा

है, इसलिए कि राम तो सारी दुनिया के मालिक हैं, वे क्या त्याग करेंगे, जो भक्त है, मनुष्य है, वहीं त्याग कर सकते हैं। इसलिए भरत का चरित्र रामचरितमानस में उन्होंने बहुत... बात आज कल के लोग नहीं समझ सकते।” (अक्षरपर्व, देशबंधु रचना वार्षिकी, 1998, पृ. 17)

हालाँकि कुछ आलोचक आचार्य रामविलास शर्मा के ऊपर आरोप लगाते हैं कि वे आलोचना में दोहरा मापदंड अपनाते हैं। ऐसे आलोचकों का मानना है-“जिस तर्क से वे अपने आलोचकों को ध्वस्त करते हैं, उसी तर्क से वे अपने समर्थक लेखक की पीठ थपथपाते हैं। विरोधी को ध्वस्त करने के लिए वे प्रायः व्यंग्य और वक्रता से काम लेते हैं, जिससे तथ्यों के प्रति वे गंभीर और विश्वसनीय नहीं रह जाते। वे अपने प्रिय लेखकों को प्रतिमान की तरह इस्तेमाल करते हैं। तुलसी के सामंत विरोधी मूल्यों...या फिर उन पर लीपा-पोती की कोशिश करते हैं।” (मधुरेश, हिंदी आलोचना का विकास, पृ. 147)

भारतेन्दु युग की नवचेतना और नवजागरण ने आचार्य रामविलास शर्मा को बहुत प्रभावित किया है, यहीं कारण है कि उन्होंने उस युग का मुक्त कंठ से सराहना की है। भारतेन्दु ने अपनी पुस्तक ‘महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण’ की भूमिका में उनका रेखांकन कुछ इस प्रकार किया है- “गदर, सन् 57 की स्वाधीनता-संग्राम, हिंदी प्रदेश के नवजागरण की पहली मंज़िल है। दूसरी मंज़िल भारतेन्दु का युग है.... हिंदी नवजागरण का तीसरा चरण महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके सहयोगियों का कार्यकाल है....हिंदी नवजागरण के संदर्भ में निराला का लेखन महावीर प्रसाद द्विवेदी के ही कार्य की अगली कड़ी है।” (डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ. 266) अपनी रुचि और तैयारी के अनुकूल रामविलास शर्मा का श्रेष्ठतम अध्ययन आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल को लेकर है और इस बात का श्रेय भी उन्हें ही जाता है कि भारतेन्दु के कृतित्व को वे अनेक विभ्रमों से खींच कर लाए। कबीर की तरह ही भारतेन्दु भी बहुत समय तक लेखक कम समाज-सुधारक अधिक माने जाते थे। उन्हें आधुनिक साहित्य-चेतना के केंद्र में स्थापित करना आचार्य शर्मा जी का ही काम है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के व्यापक महत्त्व की ओर संकेत करते हुए उन्होंने लिखा है कि-“द्विवेदी जी की युगांतकारी भूमिका यह है कि उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से अनेक समस्याओं का विवेचन गहराई से किया है।” (महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, रामविलास शर्मा, पृ. 84)

प्रेमचंद की जनवादी चेतना ने डॉ. रामविलास शर्मा को बहुत प्रभावित किया है। प्रेमचंद के बारे में वे लिखते हैं

कि-“हिंदुस्तान की किसानों की प्रेमचंद की रचनाओं में जो आत्माभिव्यंजना मिला है वह भारतीय साहित्य में बेजोड़ है।” इसी तरह उनकी सूझबूझ के बारे में उनका कहना है-“राष्ट्रीय नेताओं की अपेक्षा प्रेमचंद की सूझबूझ कहीं अधिक परिपक्व और विकसित थी और उसके सर्जनात्मक उपयोग का गहरा विवेक उनके पास था। प्रेमचंद की पैनी निगाह देख रही थी कि हिंदुस्तान की जनता लड़ रही है बिना किसी पार्टी की मदद के बिना किसी राजनीतिक नेता के सलाह का फायदा उठाए।” (रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, पृ. 84)

आचार्य रामविलास शर्मा महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के प्रशंसक भी हैं और उसके निकट भी रहे हैं। निराला के बारे में वे कहते हैं कि-“बारह वर्ष तक इनके संपर्क में रहने के कारण उन पर पूर्ण तटस्थता के साथ लिखना मेरे लिए प्रायः असंभव है, पर साहित्य के हित को ध्यान में रखते हुए मैंने प्रयास किया है कि कहीं उनकी अनुचित प्रशंसा न हो और कहीं भी उनके साहित्य की कमजोरियों पर पर्दा डालने से हमारी नयी साहित्यिक प्रवृत्तियों का अहित न हो।” (वही, पृ. 311) कहना न होगा कि यह दृष्टिकोण हर आलोचक का होना चाहिए। आमतौर पर देखा गया है कि आचार्य रामविलास शर्मा छंदोबद्ध कविता के समर्थक हैं, फिर भी उन्होंने निराला के मुक्त छंद की प्रशंसा की है, क्योंकि उनका मानना है कि निराला के मुक्त छंद में गेयता, ध्वनि साम्य, अनुप्रासिकता, काव्य गुणों की सत्ता आदि विशेषताएं रहती हैं। पर नई कविता के प्रति आचार्य रामविलास का नज़रिया ठीक नहीं लगता है। इस बात की ओर ध्यान दिलाते हुए बच्चन सिंह लिखते हैं कि-“नई कविता के प्रति उनका दृष्टिकोण लगभग वैसा ही नकारात्मक है जैसा शुक्ल जी का छायावाद के प्रति। इसमें संदेह नहीं कि वे नई कविता के धिनौने व्यक्तिवाद का कच्चा-चिट्ठा खोल कर रख देते हैं, पर इसी सिलसिले में वे जब मुक्तिबोध में रहस्यवाद, अस्तित्ववाद ढूंढने लगते हैं, तो उसमें पूर्वाग्रह की गंध आती है।” (डॉ. बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 389)

अपनी इन्हीं सीमाओं के बावजूद रामविलास शर्मा ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना परंपरा को समृद्ध किया है, इसमें कोई संदेह नहीं है। अपने विचारधारात्मक संघर्ष के द्वारा उन्होंने एक विशेष प्रकार के साहित्य का विरोध करके राष्ट्रीय, जनवादी और प्रगतिवादी साहित्य की जो प्रतिष्ठा किया है, वह एक आलोचक के रूप में, कीर्ति को दीर्घ काल तक जीवित रख पाने में समर्थ है।

**हिंदी-विभागाध्यक्ष, डिगबोई महाविद्यालय, डिगबोई, तिनसुकिया,
(असम) 786171**

यदि गाँधी की चलती तो बाबा साहेब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर संविधान सभा में कभी न पहुँच पाते

मूलचन्द सोनकर

यह आम धारणा है कि गाँधी की कृपादृष्टि के कारण ही डॉ. अम्बेडकर का संविधान सभा में प्रवेश सम्भव हो सका था। इतना ही नहीं यह भी प्रचारित है कि गाँधी ने ही उन्हें स्वतंत्र भारत का पहला कानून मंत्री बनवाया था। इस धारणा को अधिकांश दलित बुद्धिजीवियों ने भी अपना रखा है बल्कि मैं तो यह कहना पसंद करूँगा कि लगभग सभी दलित इस धारणा के शिकार हैं क्योंकि इस धारणा के प्रतिवाद में किसी दलित द्वारा लिखा गया कोई भी लेख पढ़ने को तो नहीं मिला लेकिन पुष्टि में लिखा लेख ज़रूर पढ़ने को मिला। यह दुखद स्थिति है। गाँधी का डॉ. अम्बेडकर के प्रति वितृष्णा की सीमा तक विरोध जग-जाहिर है। गाँधी जीवनपर्यन्त दलित-विरोधी वर्ण-व्यवस्था की पैरोकारी करते रहे। वह डॉ. अम्बेडकर का विरोध ही इसीलिए करते थे क्योंकि वह वर्ण-व्यवस्था का सम्पूर्ण विनाश चाहते थे। गाँधी की ज़िद्दी धूर्तता डॉ. अम्बेडकर के मिशन की राह में सबसे बड़ी बाधा थी। वर्ण-व्यवस्था को अक्षुण्ण रखने का सीधा तात्पर्य जातिगत श्रेष्ठता के वर्चस्व को बनाये रखना था। डॉ. अम्बेडकर इसी वर्चस्व को समाप्त करना चाहते थे। गाँधी के साथ पूरा हिन्दू समाज उनके जीवन में भी खड़ा था और आज भी खड़ा है। अम्बेडकर के साथ पूरा दलित समुदाय उनके जीवन में भी नहीं था और आज भी नहीं है। यह दलित समुदाय की विडम्बना है। वे हिन्दुओं की मानसिक दासता की बेड़ी को काटना ही नहीं चाहते। उन्होंने गाँधी की दलित-मसीहा की दुष्प्रचारित छवि को मान्यता दे रखी है। यह उनकी वैचारिक दरिद्रता का सबूत है। वे सवाल करने की, जिज्ञासा करने की, आलोचना व आत्मालोचना करने की ज़रूरत नहीं समझते, इसीलिये अपनी तर्क-शक्ति को कुंठित कर रखा है। दूसरी तरफ, हिन्दू बुद्धिजीवियों ने दलित-विरोधी गाँधी को सुनियोजित ढंग से महिमामंडित करने का अभियान चला रखा है। वे उनकी दलित-मसीहा की छवि गढ़ने में सफल भी हो रहे हैं। इस लेख का उद्देश्य इसी धूर्तता का पर्दाफाश करके पाठकों

और उनके माध्यम से जनसामान्य को वास्तविकता से भिन्न कराना है। यह मेरा पहला प्रयास नहीं है। इसके पूर्व भी मैं 'डॉ. अम्बेडकर के संविधान सभा में प्रवेश और धर्म-परिवर्तन की वास्तविकता' शीर्षक से एक लेख लिख चुका हूँ जो मासिक पत्रिका 'बयान' के मार्च 2012 के अंक में प्रकाशित हो चुका है। इस लेख में कुछ और तथ्यों के साथ केवल संविधान सभा में डॉ. अम्बेडकर के प्रवेश के प्रकरण पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

प्रायः सम्पूर्ण बौद्धिक जगत अब तक इस तथ्य से भिन्न हो चुका होगा कि गाँधी के बाद महानतम भारतीय के चयन हेतु आउटलुक पत्रिका, सीएनएन-आईबीएन और टीवी चैनल 18 ने सम्मिलित रूप से एक सर्वेक्षण कराया था। इसमें डॉ. अम्बेडकर प्रथम स्थान प्राप्त करके विजेता घोषित हुए थे। इसी सर्वेक्षण के परिणाम को केन्द्र में रखकर आउटलुक पत्रिका ने हिन्दी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में अपना विशेषांक प्रकाशित किया था। हिन्दी में यह अगस्त-सितम्बर 2012 का और अंग्रेज़ी में 20 अगस्त 2012 का अंक था। इनमें पक्ष-विपक्ष में कई लेख थे। अंग्रेज़ी वाले अंक में सुधीन्द्र कुलकर्णी का भी "The Theology of Intolerance" शीर्षक से एक लेख था। इस लेख में गाँधी का महिमामण्डन इस वाक्य के द्वारा किया गया है- It is a glowing tribute to the large-hearted and visionary leadership of Gandhiji that he prevailed upon Nehru and other senior Congress leaders to give an important responsibility to Ambedkar in drafting the Constitution and also to include him in independent India's first government as law minister. (page 58)

इसे हिन्दी में इस प्रकार अनुवाद किया जा सकता है- "यह विशाल-हृदय और स्वप्नदृष्टा गाँधीजी का अनुपम उपहार है कि उन्होंने नेहरू तथा अन्य वरिष्ठ काँग्रेसी नेताओं को राजी करके अम्बेडकर को संविधान-निर्माण की महत्वपूर्ण

जिम्मेदारी तो दिलवायी ही, स्वतंत्र भारत की पहली सरकार में कानून मंत्री के रूप में शामिल भी करवाया।” उक्त लेख को पढ़कर मैंने ई-मेल के माध्यम से सुधीन्द्र कुलकर्णी को यह पत्र भेजकर उनसे उनके कथन के अभिलेखीय साक्ष्य की माँग की-“I have gone through your article 'The Theology of Intolerance published in Independence Day Special of 'Out look' dt. August 20, 2012. It needs a detailed discussion for a balanced and authentic argument. I need that documentary evidence upon which you have based your statement- "It is a glowing tribute India's first government as law minister". Please make it available at the earliest.

अनुस्मारक देने के बाद भी सुधीन्द्र कुलकर्णी ने मेरे पत्र का उत्तर नहीं दिया। पत्रिका के उक्त अंक पर पाठकीय प्रतिक्रिया जानने के लिये जब मैंने इंटरनेट पर पता लगाने का प्रयास किया तो मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। कुलकर्णी के लेख के विरोध में अनेकानेक पाठकों ने पत्र लिखे थे। उन्हीं में से दो पत्रों का अनुवाद/भावानुवाद यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

पहला पत्र जो श्री संजीव भंडारकर ने मुम्बई से लिखा है, उसका आशय निम्नवत् है-कुलकर्णी की विचारधारा का कोई भी नेता/विचारक गाँधी के बाद महानतम भारतीय की चयन सूची के शीर्ष 1000 लोगों में भी अपना नाम नहीं दर्ज करा सका। इसी कृंठा और हताशा के कारण वह डॉ. अम्बेडकर पर अपना विष वमन कर रहे हैं। कुलकर्णी को यह सोचकर अपने आँसू पोंछना चाहिये कि जब नेहरू, पटेल, मंगेशकर, तेंदुलकर जैसे दिग्गज कहीं के नहीं रहे तो गोलवरकरों/हेडगेवारों/सावरकरों आदि का क्या हथ्र होता? डॉ. अम्बेडकर को प्रारूप समिति (ड्राफ्टिंग कमेटी) का अध्यक्ष बनाने में गाँधी/नेहरू/पटेल की भूमिका का प्रचार आधुनिक भारत के इतिहास का सबसे बड़ा झूठ है। पैट्रिक फ्रेंच ने अपनी पुस्तक में इस तथ्य को बहुत स्पष्टता से रेखांकित किया है कि 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन से लेकर भारत की आज़ादी तक महात्मा का एक सूत्री एजेण्डा यह सुनिश्चित करना था कि कांग्रेस और ब्रिटिश डॉ. अम्बेडकर को नेपथ्य में ढकेलकर किसी भी तरह मुख्यधारा में प्रवेश न करने दें। मुझे ऐसे किसी दृष्टान्त अथवा प्रगति की जानकारी नहीं है जिससे यह पता चल सके कि आज़ादी से लेकर अपनी मौत तक डॉ. अम्बेडकर के लिये महात्मा का हृदय परिवर्तित हुआ हो।

दूसरा पत्र बेंगलुरु से नवीन ने लिखा है। इस पत्र के द्वारा उन्होंने बड़े विस्तार से सम्बन्धित प्रकरण पर बिन्दुवार चर्चा

करके झूठ का पर्दाफाश किया है। इतना ही नहीं पत्र की समाप्ति में उन्होंने गाँधी के पक्षकारों को उन्हें गलत साबित करने की चुनौती भी दी है। इसका भावानुवाद यहाँ दिया जा रहा है:-

संविधान सभा में डॉ. अम्बेडकर के समावेश को हमेशा गाँधी का उनके झूठे प्यार से जोड़कर प्रचारित किया जाता है। भारतीय जनता पार्टी के ब्राह्मणीय मानसिकता से ग्रस्त पूर्वाग्रही प्रवक्ता एवं राजनीतिक प्रचारक यह भी दुष्प्रचार करते रहते हैं कि डॉ. अम्बेडकर प्रारूप समिति के मात्र अर्ध यक्ष थे। संविधान निर्माण में उनका कोई योगदान नहीं है। इन झूठों को शायद यह भी पता नहीं है कि अध्यक्ष का मूलभूत दायित्व क्या होता है और वह इसका निर्वहन कैसे करता है। रामचन्द्र गुहा सरीखे कुछ स्वनामधन्य इतिहासकार डॉ. अम्बेडकर को अपनाता तो चाहते हैं लेकिन बिना किसी साक्ष्य के इस पूर्वाग्रह का त्याग करने को तैयार नहीं हैं कि गाँधी के कारण ही डॉ. अम्बेडकर संविधान सभा में प्रवेश पा सके थे।

इसके बाद उनके द्वारा घटनाक्रमों को जिस प्रकार सूचीबद्ध किया गया है, वे इस प्रकार हैं-

1. कांग्रेस और मुस्लिम लीग के मध्य उत्पन्न राजनीतिक गतिरोध को समाप्त करने में जब कैबिनेट मिशन को सफलता नहीं मिली तो जुलाई 1946 में ब्रिटिश भारत के अधीन प्रान्तीय विधान सभाओं के चुनाव कराये गये। इन विधान सभाओं द्वारा संविधान सभा के लिये 296 सदस्यों का चुनाव किया गया। इस संख्या का निर्धारण लगभग दस लाख की आबादी के पीछे एक सदस्य का अनुपात था। संविधान सभा की शेष सीटों को देसी राजे-रजवाड़ों के प्रतिनिधियों के नामांकन से भरा जाना था।

2. इस चुनाव में कांग्रेस और वामपंथियों ने गठजोड़ करके डॉ. अम्बेडकर और उनके 'शिड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' को चुनाव में हरा दिया। सरदार पटेल के निर्देश पर प्रधानमंत्री बी.जी. खेर के नेतृत्व में कांग्रेस ने यह सुनिश्चित किया कि डॉ. अम्बेडकर बाम्बे से चुनकर संविधान सभा में जाने न पायें।

3. लेकिन बंगाल के नामशूद्रों ने इस खतरे को भाँप लिया और हमारे महान् नेता महाप्राण जोगेन्द्र नाथ मंडल (मुकुन्द बिहारी मलिक के सहयोग से) जो जैसुर और खुलना (अविभाजित बंगाल) से नामित हुए थे, ने अपनी सीट से इस्तीफा देकर डॉ. अम्बेडकर के लिये 296 सदस्यीय संविधान सभा में प्रवेश का मार्ग प्रशस्त किया।

4. डॉ. अम्बेडकर पाँच स्थान्तरणीय मत (transferable votes) पाकर अविभाजित बंगाल विधान सभा से विजयी हुए। (जीत के लिये न्यूनतम चार मतों की ज़रूरत थी)

इसलिये यह कहा जाता है कि डॉ. अम्बेडकर को वोट देने वालों में एंग्लो इंडियन सदस्य, कुछ निर्दलीय दलित और सम्भवतः मुस्लिम लीग के सदस्य थे।

5. 'शिङ्गलूड कास्ट फेडरेशन' के सदस्य के रूप में संविधान सभा में डॉ. अम्बेडकर एकमात्र दलित प्रतिनिधि थे।

6. डॉ. अम्बेडकर का बंगाल से कोई विशेष सम्पर्क नहीं था फिर भी वह वहाँ से चुनाव लड़ने के लिये बाध्य हुए क्योंकि उन्हें उनके गृहप्रान्त से अपेक्षित सहयोग नहीं मिला।

7. दलितों के अधिकारों और प्रतिनिधित्व को लेकर डॉ. अम्बेडकर और काँग्रेस के बीच 1940 के पूरे दशक में तीखी झड़पें चलती रहीं। डॉ. अम्बेडकर काँग्रेस के कटु एवं असमर्पणकारी आलोचक थे क्योंकि उनका मानना था कि इस पार्टी की अनेक नीतियाँ दलितों और आदिवासियों के हित में नहीं हैं।

8. इस वैमनस्य के बावजूद एक बार संविधान सभा में पहुँच जाने के बाद राष्ट्रीय घोषणा-पत्र तैयार करने के लिये डॉ. अम्बेडकर ने काँग्रेसजनों के साथ मिलकर काम किया। संविधान सभा के लिये काँग्रेस से नामित अधिकांश सदस्यों का संविधान सम्बन्धी ज्ञान अत्यन्त सीमित था। काँग्रेस ने उनका चुनाव मात्र इसलिये किया था क्योंकि वे काँग्रेसी थे और पूर्व में जेल की सज़ा काट चुके थे।

9. डॉ. अम्बेडकर का व्यावसायिक दृष्टिकोण, संविधान का उत्कृष्ट व विशद ज्ञान और एक अखंड व शक्तिशाली भारत को देखने की चाहत ने काँग्रेसी सहित अनेक सदस्यों को प्रभावित किया। इसके चलते काँग्रेस और डॉ. अम्बेडकर के बीच के रिश्ते थोड़ा बेहतर हुए।

10. लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से काँग्रेसियों के मन में उनके प्रति द्वेष-भावना बनी रही जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण पूर्वी बंगाल के विभाजन के समय देखने को मिला।

11. विभाजन के लिये तय नीति के अनुसार पाकिस्तान/पूर्वी बंगाल प्रान्त के जिस निर्वाचन क्षेत्र में मुसलमानों की आबादी 50 प्रतिशत से अधिक हो उसे पाकिस्तान/पूर्वी बंगाल को दिया जाना था। जैसुर और खुलना जिसका प्रतिनिधित्व डॉ. अम्बेडकर कर रहे थे, में मुसलमानों की आबादी 48 प्रतिशत तथा हिन्दुओं/अधिसंख्यक दलितों की आबादी 52 प्रतिशत थी और विभाजन की नीति के अनुसार इसे भारत में रहना चाहिये था लेकिन काँग्रेस ने कुत्सित चाल चलकर इसे पूर्वी बंगाल को दे दिया, जिसके कारण तकनीकी रूप से डॉ. अम्बेडकर पाकिस्तानी संविधान सभा के सदस्य बन गये। डॉ. अम्बेडकर ने पूर्वी बंगाल की सीट से इस्तीफा दे दिया। उनका कहना था कि उनके अधिकतर लोग भारत में रहते हैं,

इसलिये उनका पाकिस्तानी संविधान सभा में रहने का कोई मतलब नहीं है। जैसुर और खुलना को पूर्वी बंगाल को देने के बाद काँग्रेस मुस्लिम बहुल क्षेत्र मुर्शिदाबाद को इस थोथी दलील के आधार पर भारत में लेने के लिये अड़ गयी कि वह सम्पन्न है तथा यहाँ से होकर गंगा बहती है, जिससे भविष्य में सिंचाई परियोजनाओं के विकास में मदद मिलेगी। आज मुर्शिदाबाद पश्चिम बंगाल का हिस्सा है।

12. सवाल यह उठता है कि मुस्लिम बहुल मुर्शिदाबाद को लेकर और हिन्दू बहुल जैसुर व खुलना को लेकर क्या हम समृद्धिशाली हो गये?

13. मुर्शिदाबाद कभी सिल्क का फलता-फूलता औद्योगिक केन्द्र हुआ करता था और नवाबों के शासन काल के अधीन अठारहवीं सदी में बंगाल की राजधानी था, लेकिन आज इस जिले में सम्पूर्ण भारत की तुलना में गरीबों की संख्या सब से अधिक है। भारत की ग्रामीण आबादी का लगभग 1.47 प्रतिशत भाग पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले में आबाद है। जिले में लगभग तीस लाख लोग तथाकथित गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने को अभिशप्त हैं। यह इस जिले की ग्रामीण आबादी का 56 प्रतिशत है और पूरे देश में सब से अधिक है। जबकि खुलना, जिसे बंगला देश को दे दिया गया था, आज वहाँ का तीसरा सबसे बड़ा जिला और एक बड़े व्यावसायिक धुरी के रूप में स्थापित है। निश्चित रूप से भारत के लिये यह एक बुरा सौदा साबित हुआ।

14. डॉ. अम्बेडकर ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री और विपक्ष के नेता से मुलाकात करके उन्हें अपने प्रति किये गये अन्याय से अवगत कराया। ब्रिटिश सरकार ने इस मुद्दे को बहुत गम्भीरता से लिया क्योंकि यह विभाजन के लिए निर्धारित नीति का उल्लंघन था। ब्रिटिश सरकार ने नेहरू को सूचित किया कि या तो जैसुर और खुलना को भारत में रहने दिया जाय अथवा डॉ. अम्बेडकर को विभाजित भारत के किसी अन्य स्थान से संविधान सभा में भेजने की व्यवस्था की जाय अन्यथा इस मुद्दे का हल निकालने में समय लग सकता है और इससे विभाजन की प्रक्रिया भी विलम्बित होगी। चूँकि यह मामला सीधे-सीधे मुस्लिम लीग के साथ तय किये गये विभाजन की नीति से धाँधलेबाजी का था, काँग्रेस को यह भाँपने में देर नहीं लगी कि पहले से ही खूनी हिंसा से ग्रस्त विभाजन की प्रक्रिया पर इससे और बुरा असर पड़ेगा।

15. काँग्रेस की योजना मावलंकर को संविधान सभा का अध्यक्ष बनाने की थी। मावलंकर संविधान सभा के सदस्य नहीं थे। काँग्रेस ने पुणे निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्य न्यायविद जयकर से इस्तीफा ले लिया ताकि मावलंकर को

उनकी जगह संविधान सभा में भेजा जा सके।

16. लेकिन जैसुर और खुलना सहित वहाँ से निर्वाचित डॉ. अम्बेडकर के साथ किये गये अन्याय को लेकर ब्रिटिश सरकार की गम्भीर चिन्ता और उससे विभाजन प्रक्रिया पर मुस्लिम लीग के साथ पैदा होने वाले खतरे का भान काँग्रेस को हो चुका था।

17. पाकिस्तान-विभाजन को लेकर काँग्रेस का अनुभव सुखद नहीं था। तमाम हाथ-पाँव मारने के बाद भी उसे मुस्लिम लीग के सामने मुँह की खानी पड़ी थी और वह भारत-विभाजन को रोक नहीं पायी थी। इसलिये वह नहीं चाहती थी कि अनुसूचित जातियों/जनजातियों के पृथक प्रतिनिधित्व को लेकर उसके सामने 'पूना समझौता' के पूर्व की स्थिति पुनः उत्पन्न हो जाये। डॉ. अम्बेडकर जैसे शक्तिशाली आलोचक का सामना करना उसके लिये आसान नहीं था। इस समस्या के सौहार्दपूर्ण समाधान के लिये डॉ. अम्बेडकर को किसी निर्णायक प्रक्रिया से जोड़ना अपरिहार्य हो गया था।

18. काँग्रेस के अन्दर कुछ ऐसे सदस्य थे जो संविधान सभा के 1946 के कार्यकाल में डॉ. अम्बेडकर के साथ काम कर चुके थे और उनके व्यावसायिक दृष्टिकोण, संविधान पर उनके गहरे और विस्मयकारी ज्ञान से चमत्कृत थे और संविधान-निर्माण में उनके साथ काम करना मनोनुकूल समझते थे।

जब काँग्रेस किसी संविधान-विशेषज्ञ के लिये दूसरे देशों की तरफ देख रही थी-

1. डॉ. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक "स्टेट्स एण्ड माइनरिटीज: व्हाट आर देयर राइट्स एण्ड हाउ टु सेक्योर देम इन द कांस्टीट्यूशन ऑफ फ्री इंडिया" की रचना भारत के संयुक्त गणराज्य का संविधान के रूप में की थी। इसे वह संविधान सभा को उपलब्ध कराना चाहते थे लेकिन इसके पूर्व ही यह पुस्तक की शकल से सभी काँग्रेस सदस्यों के पास पहुँच चुकी थी। उन्होंने डॉ. अम्बेडकर के काम की सराहना की और उनके उत्कृष्ट ज्ञान के कायल हो गये हमारे संविधान की बुनियाद में आज यही पुस्तक है।

2. दूसरी तरफ संविधान सभा में डॉ. अम्बेडकर की अपरिहार्यता और एक अत्यन्त उपयोगी सदस्य के रूप में उनकी आवश्यकता को समझते हुए कि उनके ज्ञान का लाभ प्राप्त किये बिना संविधान निर्माण का काम आगे नहीं बढ़ सकता, भारत स्वतंत्र तो हो सकता है लेकिन गणतंत्र नहीं बन सकता, 30 जून 1947 को राजेन्द्र प्रसाद ने बाम्बे के प्रधानमंत्री बी.जी. खेर को पत्र लिखकर संविधान सभा के लिये डॉ. अम्बेडकर का चुनाव सुनिश्चित करने का निर्देश दिया। इस पत्र के द्वारा

प्रसाद ने इस तथ्य को रेखांकित किया कि संविधान पर उत्कृष्ट ज्ञान के कारण यह सुनिश्चित करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि संविधान सभा में डॉ. अम्बेडकर की सदस्यता को बनाये रखा जाय।

सम्बन्धित पत्र इस प्रकार है- "अन्य बातों के अलावा हमने यह (भी) अनुभव किया है कि संविधान सभा और विभिन्न समितियों जिनमें उन्हें नियुक्त किया गया, दोनों जगह डॉ. अम्बेडकर के काम का स्तर इतने उच्च कोटि का रहा है कि हम उनकी सेवाओं से स्वयं को वंचित नहीं कर सकते। जैसा कि आपको पता है वह बंगाल से चुने गये थे और उस प्रान्त के विभाजन के कारण अब वह संविधान सभा के सदस्य नहीं रहे। मेरी प्रबल इच्छा है कि वह संविधान सभा के अगले सत्र जो 14 जुलाई से शुरू होने जा रहा है, की कार्यवाही में हिस्सा लें।"

3. राजेन्द्र प्रसाद के अतिरिक्त सरदार पटेल जिन्होंने 1946 में बाबासाहेब के प्रवेश को अवरुद्ध किया था, ने भी बहुत गम्भीरता से यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि बाबा साहेब अम्बेडकर संविधान सभा में बने रहें। उसी दिन जिस दिन प्रसाद ने खेर को पत्र लिखा था, पटेल ने खेर से टेलीफोन पर बात करके डॉ. अम्बेडकर का चुनाव सुनिश्चित करने के लिये शीघ्र कार्यवाही करने को कहा था। दूसरे दिन पटेल ने मावलंकर से यह कहकर उन्हें सान्त्वना देने का प्रयास किया कि डॉ. अम्बेडकर के चुनाव पर जल्द से जल्द कार्यवाही किये जाने की ज़रूरत थी और चूँकि एक ही सीट रिक्त थी (इसलिये आपका चुनाव नहीं हो सका)। पटेल ने मावलंकर को बताया कि यहाँ (संविधान सभा में) सभी लोगों का यह मानना है कि अम्बेडकर का रवैया बदल गया है और वह समिति के एक उपयोगी सदस्य रहे हैं। उन्होंने मावलंकर को समझाया कि उनके चुनाव की कोई बहुत जल्दी नहीं है और वादा किया कि अति शीघ्र एक सीट खाली होने वाली है और काँग्रेस इस पर उनके चुनाव की व्यवस्था करेगी। पटेल ने 3 जुलाई 1947 को मावलंकर को पत्र लिखकर अपने पूर्व कथन की पुष्टि करते हुए कहा- "हर व्यक्ति अम्बेडकर को चाहता है।" इस प्रकार काँग्रेस और अम्बेडकर के बीच चल रही सन्धि-प्रक्रिया उस समय पूर्णता को प्राप्त हुई जब अम्बेडकर सदस्य के रूप में संविधान सभा में लौटे और उनका जोरदार स्वागत हुआ।

4. लेकिन यह विचार सर्वस्वीकृत नहीं है कि डॉ. अम्बेडकर के संविधान सभा में प्रवेश के पीछे गाँधी की कोई भूमिका नहीं है। माउण्टबेटन ने बिना माँगे ही नेहरू को मंत्रिमण्डल गठन के लिये मंत्रियों की सूची के कई विकल्प दिये थे। इन्हीं में

से किसी एक सूची में डॉ० अम्बेडकर का नाम सुखद आश्चर्य की तरह हो सकता है, लेकिन उन्होंने यह कहीं नहीं प्रकट किया कि किसकी सम्मति से अम्बेडकर को कैबिनेट स्तर का मंत्री पद दिया गया। (इसका स्पष्ट कारण यही हो सकता कि चूँकि जैसुर-खुलना को लेकर काँग्रेस द्वारा विभाजन-नीति की धज्जी उड़ाये जाने पर ब्रिटिश सरकार द्वारा गम्भीर चिन्ता व्यक्त की गयी थी और इसलिए उसे पता था कि अम्बेडकर का नाम प्रकट होने पर वह कड़ा विरोध करेगी।)

5. वैलेरियन रोड्रिगज ने अपनी पुस्तक 'द एसेंशियल राइटिंग्स ऑफ बी.आर. अम्बेडकर' की भूमिका में इस विषय पर चर्चा करते हुए कहा है कि डॉ. अम्बेडकर के प्रति गाँधी की सदाशयी भूमिका की अभी तक कोई पुष्टि नहीं हुई है। धनंजय कीर का विश्वास है कि सरदार पटेल, एस. के. पाटिल, आचार्य डोंडे और नेहरू के सामूहिक प्रयास से डॉ. अम्बेडकर मंत्रिमंडल में लिये गये थे। नेहरू द्वारा गाँधी के सामने सूची प्रस्तुत करने पर उन्होंने उसका औपचारिक अनुमोदन भर किया था। इस औपचारिक अनुमोदन का आधार अम्बेडकर के प्रति प्रेम न होकर यह रणनीति थी कि गन्ने के रस की तरह चूस कर उन्हें खुज्जी की तरह फेंक दिया जाये जैसा कि 1952 और 1954 के लोकसभा चुनावों में उनके साथ किया गया।

6. 29 अगस्त 1947 को संविधान निर्माण के लिये एक समिति का गठन किया गया और डॉ. अम्बेडकर को इसका अध्यक्ष चुना गया। इस समिति के एक सदस्य टी.टी. कृष्णामचारी का यह कथन ध्यातव्य है- "यद्यपि प्रारूप समिति में सात सदस्य थे, (लेकिन) एक ने इस्तीफा दे दिया उसकी जगह दूसरा नामित हो गया। एक सरकारी कामों में अत्यधिक व्यस्त रहता था। बीमारी के कारण दो सदस्य दिल्ली से बहुत दूर (बाहर) रहते थे। परिणामस्वरूप डॉ. अम्बेडकर को संविधान-निर्माण के बोझ को अकेले ही उठाना पड़ा। उन्होंने जो कार्य किया वह प्रशंसनीय है।"

विधि मंत्री के रूप में डॉ. अम्बेडकर ने 4 नवम्बर 1948 को संविधान सभा के समक्ष संविधान का प्रारूप प्रस्तुत किया।

7. गाँधी और डॉ. अम्बेडकर के राजनीतिक और सामाजिक दर्शन समान नहीं थे, दोनों कभी भी एक दूसरे के विचारों से सहमत नहीं हो सके। गाँधी और काँग्रेस ने कभी भी डॉ. अम्बेडकर के प्रति प्रेम का प्रदर्शन नहीं किया जिसकी पुष्टि संविधान निर्माण के बाद की इस घटना से होती है- "1952 में डॉ. अम्बेडकर ने उत्तरी बम्बई की लोक सभा सीट से चुनाव लड़ा था और अपने पूर्व सहायक एन.एस. काजोलकर से हार

गये थे। काँग्रेस ने दलील दी कि डॉ. अम्बेडकर सोशलिस्ट पार्टी के साथ थे जिसने उन्हें धोखा दिया जबकि वास्तविकता यह थी कि हिन्दू कोड बिल के मुद्दे पर इस्तीफा देकर डॉ. अम्बेडकर ने 1952 का लोकसभा का चुनाव लड़ा था और काँग्रेस ने उपजाति का कार्ड खेलकर उनके पूर्व सहायक एन. एस. काजोलकर को उनके खिलाफ खड़ा करके उन्हें चुनाव हरवा दिया।"

8. यह मामला यहीं पर नहीं रुका। बाद में काँग्रेस के समर्थन के बिना डॉ. अम्बेडकर राज्य सभा के लिये चुन लिये गये। दुबारा 1954 में भंडारा सीट से लोक सभा का उपचुनाव लड़े और काँग्रेस ने उन्हें फिर हरवा दिया।

निष्कर्ष

डॉ. अम्बेडकर के प्रति काँग्रेस और गाँधी के तथाकथित प्रेम के खंडन के प्रमुख बिन्दु।

गाँधी क्या कर रहे थे जब

(I) 1946 में काँग्रेस ने संविधान सभा में डॉ. अम्बेडकर का प्रवेश बाधित कर दिया था। यदि गाँधी के मन में डॉ. अम्बेडकर से संविधान तैयार करवाने की योजना होती तो उन्हें इतने घटिया तरीके से न हरवाया जाता। संविधान तैयार करने का काम कोई बच्चों का खेल नहीं था और काँग्रेस/गाँधी के पास निर्विवाद रूप से इतनी समझ तो थी ही कि जिस गुरुतर दायित्व को साकार करने के लिए 1946 में संविधान सभा का गठन किया गया था उसके लिये एक सुयोग्य, सक्षम तथा दक्ष व्यक्ति की आवश्यकता थी।..... फिर किसलिये काँग्रेस ने 1946 में बाबासाहेब का प्रवेश बाधित किया?

(II) जब डॉ. अम्बेडकर महाप्राण जोगेन्द्रनाथ मंडल और बंगाली नामशूद्र की मदद से संविधान सभा में पहुँच गये, तो गाँधी/काँग्रेस ने उनकी सदस्यता को फिर से बाधित करने के लिये गंदा खेल खेला। आज़ादी के बाद विभाजन-नीति का मखौल उड़ाते हुए बाबासाहेब के प्रतिनिधित्व वाले जैसुर और खुलना को पूर्वी बंगाल को दे दिया और उसके बदले मुर्शिदाबाद को ले लिया जो आज सम्पूर्ण भारत में सबसे गरीब जिला है। क्या गाँधी जैसुर और खुलना को जो आज बंगला देश की व्यावसायिक धुरी है, उसे इसलिये देने को तैयार हो गये थे ताकि बाबासाहेब संविधान सभा में प्रवेश करने से वंचित हो जायें? क्या देश महत्त्वपूर्ण था अथवा दलितों को प्रतिनिधित्व से वंचित रखने का पूर्वाग्रह, जैसा कि 1932 में पूना समझौते के समय किया गया था?

(III) यदि विभाजन-नीति का विधिसम्मत पालन करते हुए 50 प्रतिशत से अधिक हिन्दू आबादी वाले जैसुर-खुलना क्षेत्र जिनका प्रतिनिधित्व डॉ. अम्बेडकर कर रहे थे, को भारत में शामिल कर लिया जाता तो आज़ादी के बाद कम्युनिस्ट शासित बंगाल में कराये गये लाखों नामशूद्रों का नरसंहार रोका जा सकता था।

(IV) आज़ादी के मात्र दो महीने पहले जून 1947 में न्यायविद जयकर का पुणे निर्वाचन क्षेत्र में इस्तीफा लेकर मावलंकर को संविधान सभा का अध्यक्ष बनाने की काँग्रेसी योजना न होती।

(V) काँग्रेस/गाँधी की योजना के अनुसार संविधान सभा का अध्यक्ष मावलंकर होते, चाहे काँग्रेस लॉबी का कोई अन्य सदस्य चाहे कोई विदेशी विशेषज्ञ, लेकिन इतना तय है कि 2 जून 1947 तक इस पद के लिए काँग्रेसी/गाँधी की सूची में डॉ. अम्बेडकर के नाम का कहीं कोई अता-पता नहीं था।

तथ्य

(I) काँग्रेस संविधान-निर्माण के लिए किसी विदेशी विशेषज्ञ की तलाश में थी और इसके उच्चजातीय चमचे मनु का संविधान लागू करवाना चाहते थे इसलिये संविधान सभा को नेतृत्व प्रदान करने के लिए वे कभी डॉ. अम्बेडकर को पसंद कर ही नहीं सकते थे। डॉ. अम्बेडकर ने देश को उत्कृष्ट संविधान दिया, लेकिन हमेशा की तरह अनुसूचित जाति/जनजाति को भरमाने के लिए गाँधी को उनका मसीहा बताया जा रहा है। इसे कुत्सित सौदेबाजी से प्रेरित राजनीति के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है?

(II) डॉ. अम्बेडकर का व्यावसायिक दृष्टिकोण, उनसे घृणा करने वालों के साथ भी उनकी घनिष्ठता, संविधान का उत्कृष्ट ज्ञान और संविधान की नींव रखने वाली उनकी महत्वपूर्ण रचना 'स्टेट्स एण्ड माइनरिटी', तथा एक शक्तिशाली अखण्ड भारत की उनकी चाहत जैसी अपने तमाम नैसर्गिक गुणों के कारण ही वह संविधान में सभा में पहुँच सके थे।

(III) काँग्रेस ने डॉ. अम्बेडकर के प्रति अपने वास्तविक प्रेम का प्रदर्शन 1952 और 1954 के लोक सभा चुनाव में किया था, जब उपजाति का राजनैतिक खेल खेलकर डॉ. अम्बेडकर को हरवा दिया था। यदि काँग्रेस के मन में उनके लिए प्रेम था तो उनके विरुद्ध ऐसी चाल क्यों चली गयी? स्पष्ट है कि काँग्रेस का डॉ. अम्बेडकर के प्रति कभी कोई लगाव नहीं था। उसने केवल डॉ. अम्बेडकर के उत्कृष्ट ज्ञान का प्रयोग संविधान निर्माण में किया था। उन्हें 1990 के पहले तक भारत रत्न से सम्मानित भी नहीं किया गया था।

(IV) यदि किसी व्यक्ति ने डॉ. अम्बेडकर की सहायता की

थी तो वह महाप्राण जोगेन्द्र नाथ मण्डल और बंगाल के नामशूद्र थे। जिन्होंने जैसुर-खुलना सीट से इस्तीफा देकर डॉ. अम्बेडकर का संविधान सभा में प्रवेश सुनिश्चित किया था। उनके इस बलिदान का बदला स्वतंत्र भारत में ब्राह्मणीय और कम्युनिस्ट व्यवस्था में शासित प्रदेश बंगाल में लाखों नामशूद्रों का नरसंहार करके लिया गया। हमको इतिहास के पृष्ठ में गुम इस महान् नेता के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए।

अप्रैल 2013 तक नवीन की चुनौती को किसी पाठक द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। इससे स्पष्ट है कि उनके द्वारा किया गया उक्त विश्लेषण एकदम सत्य है और डॉ. अम्बेडकर के कद को छोटा करने तथा गाँधी की छवि को दलित मसीहा के रूप में स्थापित किये जाने के दूषित रणनीति के रूप में गाँधी के पक्ष में उनके चमचों द्वारा अभियान चलाया जा रहा है।

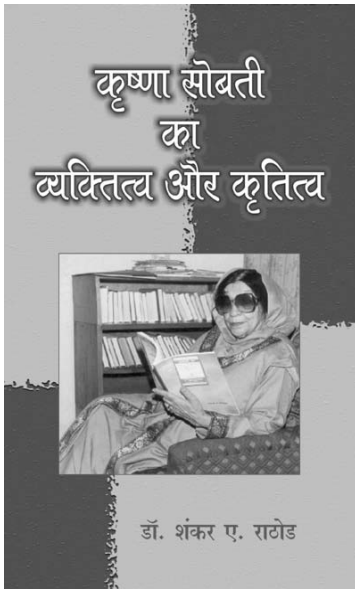
सुधीर कुलकर्णी को मेरे द्वारा जो खत भेजा गया था उसका उत्तर ना मिलने पर मैंने प्रकरण का पटाक्षेप करते हुए यह पत्र उन्हें ई-मेल के द्वारा भेजा था- "Mr Kulkarni, I am ashamed of the people like you who are a blot on our otherwise great country. You have a lot of contempt and derogatory feelings for Dalits knowing no bounds that is why you have bounced upon the greatest Ambedkar even greater than your Gandhiji like a carnivorous animal and vomited a lot of venom on the unchallengeable personality of Dr. Ambedkar and thereby insulted millions of millions Dalits of this country and abroad and togetherwith a lot of rational, prudent and just sympathizers from other caste and creed fighting honestly for their cause. Mind you that Dalits never stand against any sort of criticism, but they never tolerate mean dealings. Muster courage and come forward with a healthy criticism if you are able and capable which I am sure you are by virtue of your gifted birth otherwise stop crying, crowing, bellowing, braying and croaking. I have gone through the detailed comments on your article 'The Theology of Intolerance' and come to the factual truth. I do not need your reply. Would you term it my INTOLERANCE if I say fie on you Mr. Kulkarni? Also would you still boast by saying like 'THIS BEGETS AN IMPORTANT QUESTION FOR WHICH AMBEDKARITES HAVE NO ANSWER?'

“कुलकर्णी जी, मुझे आप जैसे लोगों पर जो अन्यथा इस महान् देश पर दाग के समान हैं, शर्म आती है। आप दलितों के प्रति घृणास्पद और अपमानजनक भावना से भरे हुए हैं। यही कारण है कि आप महानतम अम्बेडकर जो आपके गाँधी से भी महान् हैं, पर किसी हिंसक पशु की तरह झपट पड़े और उनके व्यक्तित्व पर विषवमन करने लगे। अपने इस कृत्य के द्वारा आपने इस देश तथा देश के बाहर रहने वाले लाखों लाख दलितों का अपमान तो किया ही है, साथ ही साथ उन अनेकानेक युक्तिसंगत, विवेकशील एवं निष्पक्ष गैर दलित लोगों का भी अपमान किया है जो दलितों के साथ सहानुभूति रखते हैं और जाति की सीमा से परे जाकर उनकी बेहतरी के लिए संघर्ष करते हैं। आपको पता होना चाहिए कि दलित किसी आलोचना का विरोध नहीं करते, लेकिन वे किसी निकृष्ट आचरण को बर्दाश्त भी नहीं करते। मैं आपको स्वस्थ आलोचना करने की चुनौती देता हूँ, यदि आप इसके लिये योग्य एवं सक्षम हों और मैं समझता हूँ कि आप अपनी जाति के कारण योग्य एवं सक्षम माने ही जायेंगे। यदि आप ऐसा नहीं कर सकते हैं तो कृपया चिल्लाना, काँव-काँव करना,

चिंघाड़ना, रेंकना और टराना बन्द कर दें। मैंने आपके लेख “थियोर्लोर्जी ऑफ इन्टालेरेन्स” पर विस्तृत टिप्पणी पढ़ ली है और वास्तविकता से भिन्न हो गया हूँ। मुझे आपके के उत्तर की ज़रूरत नहीं है। यदि मैं ये कहूँ कि आप पर धिक्कार है कुलकर्णी जी तो क्या आप इसे मेरी असहिष्णुता कहेंगे? क्या आप अब भी घमण्ड पूर्वक यह कहेंगे कि ये एक ऐसा महत्त्वपूर्ण सवाल है जिसका अम्बेडकरवादियों के पास कोई उत्तर नहीं है?”

इतने कठोर एवं अपमानजनक पत्र को पढ़कर कोई भी व्यक्ति क्रोध से उबल पड़ेगा, लेकिन कुलकर्णी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। इससे यह स्पष्ट है कि उनका पूरा लेख झूठ की बुनियाद पर लिखा गया है। दलितों को ऐसे गाँधीवादियों से ही नहीं बल्कि अपने बीच के गाँधी के चाटुकार हरिजनों से भी सावधान रहने की ज़रूरत है। ये सभी मिलकर दलित मिशन की बुनियाद को खोखला कर रहे हैं।

48 राज राजेश्वरी नगर, गिलट बाज़ार, वाराणसी-221002



कृष्णा सोबती समकालीन उपन्यासकारों में एक अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व के साहित्य में उतरती है। उन्होंने अपने विशिष्ट रचनाओं के माध्यम से साहस दिखाया है। उनके सभी रचना उपन्यास हो या कहानी, संस्मरण वे यथार्थ बोध और स्पष्टवादिता के उदाहरण हैं। जिनके केन्द्र में नारी है। सोबती स्वयं एक नारी होने के नाते उन्होंने स्त्री की पीड़ा को और समस्याओं को गहराई से उजागर किया है। उनके उपन्यासों में स्त्री की पीड़ा वह स्वयं सोबती जी की पीड़ा बन गयी है। उनका रचना में नारी के प्रति उत्पन्न संवेदना सोबती की निजी अनुभव मालूम पड़ता है। उन्होंने रचना द्वारा स्त्री की सम्पूर्ण दुर्बलता को दूर करके इसे समाज में शक्ति प्रदान करने की कोशिश की है। मूल्य 350/-

वाङ्मय बुक्स की पुस्तक

इक्कीसवीं शताब्दी का दलित साहित्य समय और संस्कृति के द्वंद्व का आईना है

प्रा. निकालजे भुपेद्र सर्जेराव

उत्तर आधुनिक समय के बाद दो विमर्शों ने पाठकों का विशेष ध्यान खींचा उनमें एक हैं- स्त्री विमर्श और दूसरा दलित विमर्श। भारतीय समाज में परंपरा में वर्णवाद, वर्गवाद और जातिवाद के कारण शम्बूक, कर्ण, एकलव्य से डॉ. भीमराव अम्बेडकर तक के प्रबल प्रतिभा संपन्न, महानुभावों के साथ अन्याय होता रहा है। परंपरा के साथ सबने अपनी अपूर्व शक्ति से संघर्ष किया। वाल्मीकि और वेद व्यास जैसे महाकवियों का महाकाव्य और उनके राम कृष्ण पूजे जाते हैं फिर भी वर्णवाद और वर्गवाद का पुरस्कर्ता 'मनु' आज भी सांप्रत परंपरा में जीवित है। भारतीय समाज व्यवस्था पर हमेशा सवर्णों का वर्चस्व रहा है और दलितों के बारे में उनकी रुचि अमानवीय और विषम रही है। वर्ण व्यवस्था में सवर्णों का एकाधिकार था। बौद्धिक, शारीरिक, आर्थिक ताकत इनके पास थी, उत्पादन की शक्तियां भी इन्हीं के पास थी। सवर्णों ने बुद्धि-बाहू-पैसा के बल पर दलितों को हाशिये में धकेल दिया।

भारत के दलितों का दुर्भाग्य है कि कानून बनने के बावजूद समाज, संस्कृति, शिक्षा, साहित्य और मीडिया में अस्पृश्यता अतीत की वस्तु नहीं बना। स्थिति में इजाफा यह हुआ कि सुधरे हुए परिवर्तित रूप में अस्पृश्यता पहले शरीर से होती थी अब विचारों, हितों और हकों से होती है जो शरीर पर कम मन- मस्तिष्क पर अधिक अघात पहुंचाती है। आज स्वतंत्रता प्राप्ति के 65 वर्ष के बाद भी देश के उपेक्षित लोगों में खास परिवर्तन नहीं हुआ है। अंधकार की गर्त से बाहर नहीं आये हैं। स्वतंत्रता का सूर्योदय सिर्फ शोषकों, स्वार्थी नेताओं और धर्म का बाह्य आडंबर करने वालों के लिए हुआ लगता है। आज का बहुजन समाज महाभयंकर परिवेश से गुजर रहा है। निजीकरण के कारण शिक्षा इतनी महँगी हो गई है कि दलित, आदिवासी और यायावर की पढ़ने की सामर्थ्य ही नहीं है। महँगी फीस देने को पैसा नहीं है, उनका जीवन यह मोल मजूरी से गुजर रहा है, डॉ. अंबेडकर जैसा युग पुरुष कितनी

विषम परिस्थिति से जूझकर अपनी शिक्षा को प्राप्त करता है और उन्होंने कहा शिक्षित बनो तब ही तुम्हारी मुक्ति संभव होगी। देश महासत्ता की ओर जा रहा है ऐसा एक ओर वातावरण निर्माण यह किया जा रहा है, तो दूसरी ओर आज भी भारतीय समाज का चित्र बहुत दैनीय बनता जा रहा है। वास्तविक स्थिति को दर्शाने का प्रयास साहित्य यह करता है। क्योंकि साहित्य विचार-सम्प्रेषण का सबसे सशक्त माध्यम है। साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि समाज में जब-जब विघटन की स्थिति की आशंका हुई है तब तब साहित्य मनीषियों ने आगे आकर अपनी लेखनी द्वारा सामाजिक विघटन में सामंजस्य लाने का प्रयास किया है। आज दलित-लेखन के नाम पर कई नये-नये विचार-विमर्श हो रहे हैं। दलित लेखक-चमनलाल ने इसे 'फासीवादी' कर्म बताया। अगस्त 2004 में 'हंस' पत्रिका का दलित-विशेषांक प्रकाशित हुआ। इस अंक में मैनेजर पाण्डेय का साक्षात्कार छपा था, जिसमें उन्होंने कहा है 'दलित - साहित्य हिंदी साहित्य का लोक तंत्रीकरण कर रहा है।'

हिंदी में आज दलित साहित्य आक्रोश या विद्रोह का साहित्य बनकर रह गया है। दलित साहित्यकार सवर्णों के द्वारा लिखे गये दलित साहित्य को खारिज कर चुके हैं। यहाँ तक की दलित साहित्यकार प्रेमचंद के साहित्य को भी खारिज कर चुके हैं। वे दलितों के द्वारा दलितों पर लिखे साहित्य को ही दलित साहित्य मानते हैं और उनका साहित्य प्रतिक्रियात्मक लगता है। सवर्णों द्वारा लिखे गये दलित साहित्य को सिम्पैथी का साहित्य कहकर दलित वर्ग उसे पूर्णरूप खारिज कर चुका है। अगर कहें तो दलित-साहित्यकारों का एक बहुत बड़ा अंश यह मानकर चलता है कि - "दलितों द्वारा, दलितों के जीवन पर दलितों के लिए लिखा साहित्य ही दलित साहित्य है।" आधुनिक काल में डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर जैसे क्रान्तदृष्टा युग पुरुष के लेखन एवं संघर्षों के परिणामस्वरूप समूचे भारतवर्ष में दलित लेखकों की एक नवीन परम्परा हमारे

सामने आती है। डॉ. आंबेडकर ने अपनी आत्मकथा में लिखा था जो 'मेरा जीवन' शीर्षक से 'जनता' के 06 नवम्बर 1954 के अंक में प्रकाशित हुआ था। डॉ. आंबेडकर का यह आत्मकथा दलित साहित्य की ऐतिहासिक धरोहर है। उनका सपना था 'मेरा बचपन' नाम से एक आत्मकथा लिखने का, लेकिन यह सपना अधूरा रहा। मराठी भाषा में दया पवार का 'बलूत' यह आत्मकथा प्रकाशित हो गई और दलित लेखन आरंभ हुआ। उत्तर आधुनिक समय में आते-आते दलितों को केंद्र में रखकर लिखना शुरू हुआ। दलितलेखन साहित्यकारों ने दलितों के प्रति सहानुभूतिपरक साहित्य लिखा जबकि दलितों का साहित्य स्वानुभूति का और भोगा हुआ साहित्य है। हिंदी दलित कथाकारों में मोहनदास नैमिशराम ने दलितों के दर्द और प्रश्नों को अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के सामने लाया। किसी भी सभ्यता और संस्कृति का विकास पीढ़ी दर पीढ़ी उनके सामूहिक प्रयास से होता है। इन पीढ़ियों के चिंतन के परिणामों को साहित्य एक धरोहर के रूप में न केवल सुरक्षित रखता है, बल्कि उसे नया स्वरूप भी प्रदान करता है। उनका उपन्यास 'मुक्तिपर्व' - इस उपन्यास को पढ़कर देश की आज़ादी के सवाल पर एक बार फिर से बहस हो सकती है। दलितों की दृष्टि से अधूरी आज़ादी पूरा देश अंग्रेज़ी शोषण से उसे आज तक आज़ादी नहीं मिली। मोहनदास नैमिशराम ने अपने इस उपन्यास में आज़ादी के साठ साल बाद भी जब दलितों को सामाजिक, आर्थिक शोषण से मुक्ति और न्याय नहीं मिला। मजबूर होकर यही प्रश्न इस समुदाय को सताता है। आज़ादी आखिर किसके लिए है। उनका मुक्तिपर्व कब आएगा यही प्रश्न लेखक समाज के बड़े ठेकेदार से करते हैं। हम मुक्ति पर्व किसे कहां जब देश आज़ाद हुआ या जब किसी जाति या कुछ जातियों को आज़ादी मिली उसे मुक्ति से आखिर तात्पर्य क्या है एक आदमी की मुक्ति या एक विशेष जाति ...इस संदर्भ में डॉ. आनन्द वास्कर के विचार दृष्टव्य हैं-“सारा दलित समाज उस हादसे का शिकार है जब वर्चस्ववादी वर्ग ने क्षमसन्नन्द व्यापक मानवता को दलित शोषित बनाया दलित-सामाजिक अवधारणा है, दलित राजनैतिक और शोषित आर्थिक अवधारणा है। इस दलित दलित-शोषित के सूत्र को अन्ततः पकड़ना होगा।”

आज बाज़ार बंद है - वेधियों के जीवन संघर्ष और उनकी समस्याओं को हल करने तथा नए दरवाजे खोलने के लिए दस्तक देता है। यह उपन्यास देवदासी समस्या पर पूरे राष्ट्र के नाम पर करारा व्यंग्य है। महाराष्ट्र में ज्यादातर देवदासियां शूद्र जाति, महार तथा मांग से बनती थी। दलित समाज में

गरीबी भूखमरी, अशिक्षा आदि अनेक समस्याएं हिन्दू धर्म की देन हैं। देवदासी लड़की का विवाह यह किसी पुरुष के साथ नहीं पत्थर की मूर्ति के साथ विवाह यह किया जाता है। धर्म के नाम पर इसे भोग्या बनाकर गाँव के प्रतिष्ठित पुलिस, जमीनदार और पुजारी इसका भोग करने के लिए देव बनते। इस पर नई दृष्टि से बहस का मुद्दा आज बाज़ार बंद है। यह उपन्यास लेखक ने अंधेरे से जुझाती राष्ट्र की उन सभी बेटियों को समर्पित की है जिनके भीतर मुक्ति की चाह जीवित रही है। नारी के वेश्या रूप का मूल कारण देवदासी की प्रथा भी है। “शोषित नारी का सबसे वीभत्स रूप है वेश्या। वेश्यावृत्ति संसार के सभी पूँजीवादी देशों का असाध्य कोढ़ है।”⁴ वस्तुतः वेश्याओं को कलंकित जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उपन्यास में उत्तर प्रदेश के जनकपुर शहर के इबादतपुर मोहल्ले में वेश्या व्यवसाय चल रहा है, लेकिन यहां आई यह लड़कियां प्रताड़ित होती हैं, कोई देवदासी, कोई धोका देकर लाया गया - पार्वती का जीवन पक्ष इस प्रकार - “बिना शिव की पार्वती, शिव ने पहले इस मंदिर में बैठाकर देवदासी बनाया फिर मन्दिर से चकले में भेज दिया। पहले मंदिर के पुजारी ने इसको भोगा। फिर गाँव के पटेल ने बाजी मारी। दोनों का मन भर गया तो गाँव के सामंत, साहूकार की बारी आई, यानी हमारे समाज में जिसका जितना मान-सम्मान, उतना ही देवदासी को भोगने के लिए उनके अधिकार सुरक्षित होते हैं। अब रात में काले चोर के रूप में देवता आते हैं और इस देवी को भोगते हैं।”⁵ लेखक को सबसे ज्यादा यह सवाल बेचैन करता है कि - आखिर भारतीय समाज में वेश्यावृत्ति का धंधा बंद क्यों नहीं हो रहा है। क्या हमारी संवेदना मर गई है राष्ट्र की बेटियों को मुक्ति की नई दिशा और दृष्टि दी है।

सलाम आखिरी-मधु कांकरिया का उपन्यास एक संवेदनशील कोलाज है, लेकिन यह उपन्यास वेश्या जीवन का वृत्तांत नहीं है तो उसमें क्रोध, गुस्सा, घृणा, आक्रोश प्रतिशोध, तनाव, लाचारी, बेबसी गलती का यथार्थ है। इस धन्धे में आई लड़कियों की भूख, मजबूरी, पीड़ा, घुटन के साथ जुड़ी जीवन की दर्दभरी कहानी है। वेश्या की समाज में उपस्थिति की आवश्यकता है या नहीं, क्या वेश्या बाई - प्रोडक्ट है क्या वेश्या सभ्य समाज का गटर है, आखिर वेश्या क्या है, इन सारे सवालों का जवाब ढूँढ़ने के लिए लेखिका का कलकत्ता के लालबत्ती इलाकों के सतह तक पहुंचकर असलियत जानने के लिए खगालने का नतीजा है। 'सलाम आखिरी' कलकत्ता के सोनागाछी रेड लाउट एरिया की अंधेरी गालियों का सीधा साक्षात्कार हुए लेखिका सभ्य समाज की संवेदनहीनता का असली चेहरा दिखाया है। मधु कांकरिया की टिप्पणी- “भारत

में लालबत्ती इलाकों की स्थितियाँ कुप्रिन के चित्रण से न केवल भिन्न वरन् कहीं ज्यादा यांत्रिक, भयावह, कुत्सिन एव कुरूप है।”⁶

उत्तर आधुनिकता के संदर्भ में -आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के नाम पर बाज़ारवाद और उपभोक्ता समाज में हर कोई पैसे के लिए खुद को बेच रहा है। बेचने के लिए अलग-अलग तरीके अपना रहा है। इसलिए लेखिका कहती है कि - “एक वेश्या तो फिर भी अपना देह बेचती है अपने पेट के लिए भविष्य के लिए पर ये उद्योगपति, व्यापारी, ब्यूरोक्रेट्स, मंत्री तो अपना ईमान बेच देते हैं सिर्फ अपनी शान-शौकत और रुतबा बनाए रखने के लिए।”⁷ अवैध एवं अनैतिक तरीके से की गई कमाई करने वाले व्यापारी। आयकर से बचने के लिए रुपयों को विदेशी बैंकों में जमा करना। पैसे कमाने के इस बाज़ार में इन्सान कुछ भी करने के लिए तैयार है। आज जिनके पास धन-दौलत है, वह अपनी ज़िंदगी आराम से जी रहा है, लेकिन जिनके पास कुछ भी नहीं है, वे किस तरह से अपना जीवन जी रहे हैं... दलित शब्द का अर्थ भगवद गो मंडल शब्दकोश में इस प्रकार दिया गया है दलित- कुचला हुआ टूटा हुआ, फाड़ा हुआ, पीसा हुआ, दबाया हुआ, कुचला गया - इन उपन्यासों में हम देखते हैं कि वेश्याओं के साथ ग्राहकों का न तो कोई प्रेम है न अपनत्व का भाव है तथा न हमदर्दी वे तो पैसे देकर उसके जिस्म को बीस-तीस मिनट के लिए खरीदते हैं बाद में चले जाते हैं। हाडमांस का शरीर न हुआ रबर की गुड़िया की तरह नोचते हैं। जब एक पत्रकार पूछता है कम उम्रवाली वेश्या से कि ‘केसा लगता है नया शहर?’ तब वह उत्तर देती है- “नई ससुराल की तरह। हर रात में मरद आते हैं, तपाते हैं, सताते हैं और तड़पते हुए हमें छोड़ जाते हैं- ससाले। हर रात हमारे लिए नई होती है।”⁸ इन पंक्तियों में कड़वा सत्य उद्घाटित हुआ है। आज इक्कीसवीं शताब्दी साहित्य में यह दिखाने का प्रयास कर रही है, कि आज किस तरह से नारी जीवन को दबाया गया है। समय और संस्कृति के द्वंद्व का आईना है। आज भी यह दलित वेश्याएं आज़ाद नहीं हैं, आज भी वे पशु से बदतर जीवन जीने को मजबूर हैं। गांव हो या शहर हर स्थान पर वे अपमानित हैं। आज भी देश की कई स्त्रियां वेश्यालयों में सड़ रही हैं। वे ऐसा जीवन जीते-जीते ऊब गई हैं, वे नारकीय जीवन से मुक्ति या आज़ादी चाहती हैं। जेलों तक से कैदी छोड़ दिये गये थे, लेकिन गुलामी के इन पिंजरों से वेश्या की मुक्ति नहीं हुई थी, वे अभी भी अपने-अपने पिंजरों के भीतर थी और मुक्त होने को बेताब भी। उपन्यासकारों ने दलित जीवन से जुड़ी विभिन्न समस्याओं को रेखांकित

करने का प्रयास समय-समय पर किया है। वेश्यावृत्ति हमारी संस्कृति के हर कालखंड में किसी न किसी रूप में जीवित रही। कभी देवदासी, सर्वभोग्या, रूपजीवा तो कही नृत्यांगना, गणिका, नगरवधू तो कभी तवायफ, वारांगना, वेश्या कॉलगर्ल के रूप में। समाज की विकास वृत्ति का सीधा संबंध वेश्यावृत्ति से है। यहां लेखिका ने विषकन्या, आम्रपाली, वैशाली की नगरवधू इन हुदा के माध्यम से सदियों से चलते आए स्त्रीत्व का अपमान ही उजागर किया है। “यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते” का जाप करने वाली यह संस्कृति स्त्रियों से कभी तमीज और सभ्यता से पेश नहीं आई। उन्हें विवश किया कि वे अपने रूप और यौवन का जाम पिला-पिलाकर पुरुषों को प्राणवान, तुप्त और जीवंत रखे जिससे वे स्वयं नित्य प्रति उर्जावान और गतिशील हो स्त्रियों को गतिहीन करते रहे।”

सदियों से अपने मौलिक मानवीय अधिकारों से वंचित दलितों में चेतना जागृत करने के लिए जहां भगवान बुद्ध ने कहा -‘अपने दीपक स्वयं बनो’ वही डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने तीन मूल मंत्र दिए - शिक्षित बनो संगठित हो, संघर्ष करो’ सुप्रसिद्ध समीक्षक डॉ. धर्मवीर के शब्दों में - “दलित साहित्य वह है, जिसे दलित लेखक लिखता है दलित साहित्य की परिभाषा, पीड़ा से लेकर मुस्कान तक है। इसमें रोने के बजाय मुस्कान की खोज के द्वारा समग्रता और पूर्णता की और मनुष्य का प्रयाण है। यह कमजोरी नहीं बल्कि शक्ति है यह गुलामी नहीं बल्कि समाधान है।

संदर्भ-

1. हंस, अगस्त 2004, पृ. 200
2. समकालिन भारतीय साहित्य, मई-जून 1998, पृ. 157
3. डॉ. आनन्द वास्कर, हिंदी साहित्य में दलित चेतना
4. डॉ. के. सुधा, आधुनिक हिंदी कविता में दलित नारी, अमन प्रकाशन, कानपुर 2011 पृ. 59
5. मोहनदास नैमिशराय, आज बाज़ार बंद है, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 33, द्वितीय संस्करण 2006
6. मधू कांकरिया, सलाम आखिरी, पृ. 89
7. वही, पृ. 166-167
8. स्मारिका 2010, पृ. 71

अध्यक्ष हिंदी विभाग, राधाबाई काळे महिला महाविद्यालय, अहमदनगर, महाराष्ट्र

कमलेश बख्शी के कहानी-संग्रह में चित्रित पारिवारिक जीवन (कब तक के विशेष संदर्भ में)

प्रा. संजय प्रल्हाद महाजन

बहुमुखी, बहुआयामी विलक्षण प्रतिभा की धनी कमलेश बख्शी ने कहानी, उपन्यास, यात्रा वृत्तांत आदि साहित्य विधाओं में अपनी कलम चलायी है। हिंदी कथा साहित्य के विकास में महिला कथाकारों का योगदान कम उल्लेखनीय नहीं रहा है। पहले से प्रतिष्ठित कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा जैसी लेखिकाओं के अतिरिक्त सत्तर और उसके बाद के दशक में सुनीता जैन, वर्तिका अग्रवाल, दीप्ति खंडेलवाल, इन्दुबाली, कमलेश बख्शी, सूर्यबाला, राजी सेठ, प्रतिमा वर्मा, कुसुम अंसल और माणिका मोहिनी आदि अनेक लेखिकाओं ने अपनी कहानियों के माध्यम से प्रबुद्ध पाठकों को ध्यान आकृष्ट किया है।

स्वतंत्रता के पूर्व और स्वतंत्रता के उपरांत हिंदी गद्य साहित्य ने जनमानस में चेतना जगाने का तथा परिवर्तन कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन गद्य साहित्यकारों ने अपनी प्रतिभा के सहारे अपनी विशेष छाप पाठकों पर छोड़ी है। उन साहित्यकारों में कमलेश बख्शी का स्थान अतिविशिष्ट है। बख्शी जी का जीवन और साहित्य अत्यंत सादगी भरा है। उनका साहित्य बनावटीपन से कोसों दूर है। भारतीय जनजीवन तथा विदेशी जनजीवन की कई समस्याएँ उनकी रचनाओं में परिलक्षित होती हैं। बख्शी जी एक संवदेनशील साहित्यकार हैं।

परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता उनके कथा साहित्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इसी तरह स्त्री के प्रति अपनी संपूर्ण सहानुभूति और उसके साथ होने वाले दमन एवं शोषण के विरुद्ध पूरी तरह से सचेत होते हुए भी वह किसी संकीर्ण-संकुचित रूझान को अपनी रचनात्मकता पर हावी नहीं होने देती। इसी कारण अपने मूल संस्कारों को ताक पर रखकर न वह समय के प्रवाह में बहता दिखाई देती है और न ही पश्चिमी नारों और बोडनेस की चकाचौंध में सर्जनात्मकता के अपने मूल रूप बाधित एवं ध्वस्त होने देती हैं। शताब्दियों से चले आ रहे नारी उत्पीड़न से बख्शी जी कम क्षुब्ध नहीं हैं।

पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था की एकांगिता के खिलाफ़ उनमें भी कम आक्रोश नहीं है। इसी प्रकार स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता, आत्मनिर्णय और सम्मानपूर्वक जीवन के पक्ष में वह भी स्थिर भाव से खड़ी दिखाई देती है। फिर भी वह उसके कोमल, आत्मीय एवं रचनात्मक पक्ष को कम तरजीह नहीं देती। इसलिए बख्शी जी के कथा साहित्य में स्त्री पात्रों का व्यक्तित्व पारिवारिक जीवन सामान्यतः सबल एवं प्रभावी दिखाई देता है।

कमलेश बख्शी जी ने एक जागरूक और सचेत कथा-साहित्य लेखिका के रूप में नारी जीवन की समस्याओं को अपने साहित्य के माध्यम से व्यापकता से चित्रित किया है। व्याप्त समाज की उपेक्षा और दोगम दर्जे की स्थिति उन्हें शुरू से बेचैन करती रही है। सुरक्षा, मर्यादा, शील और शुचिता के नाम पर उसके ऊपर थोपे गये बंधनों को लेकर केवल अपने कथा-साहित्य में प्रश्न ही नहीं उठाएँ, बल्कि उनके विरुद्ध अपने पात्रों को प्रायः संघर्ष करते भी दिखाया है। अर्थहीन पारंपरिक संस्कारों की जकड़न के खिलाफ़ जूझते हुए उनकी कथा नायिकाएँ चेतना संपन्न स्वतंत्र इकाई के रूप में उभरते हुए पाठकीय मन पर अपनी निजी पहचान की छाप भी छोड़ती हैं। पुरुषों द्वारा किये जानेवाले अत्याचार और शोषण का तो वे प्रतिरोध करती ही हैं, पर उनकी खैरात को अस्वीकार करने का साहस भी दिखाती हैं। इससे पता चलता है कि, स्वावलंबन को आत्मसम्मानपूर्ण जीवन के मंत्र के रूप में ग्रहण करने वाले बख्शी जी के स्त्री पात्र पारिवारिक जीवन में भी संघर्ष एवं चुनौतियों से घबराते हैं न ही पुरुष के सहारे के लिए सामान्य तथा रिरियाते दिखाई पड़ते हैं। यही नहीं जब दाम्पत्य जीवन यदि नरक बनने लगता है तो एक हद तक तो वे उसे सहन करती हैं, परंतु स्थितियाँ जब बर्दाश्त की हद पार कर जाती हैं, तब वे संबंध मायाजाल को काटकर अपनी अलग राह चुनने के लिए भी तैयार हो उठते हैं।

‘कब तक’ कमलेश बख्शी जी का 1989 में ज्ञान भारती

प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित कहानी संग्रह है। इस संग्रह में कुल मिलाकर चुनी हुई पंद्रह कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों का वर्ण्य विषय नारी जीवन की मार्मिक त्रासदी, टूटते रिश्तों के मोह भंग कर देने वाले करुण प्रसंग साथ ही आज के परिवेश में हरपल जीते मनुष्य की आकांक्षा जिंदगी से जुड़ने के अथक प्रयास आदि विषयों को लेखिका ने सूक्ष्म धरातल और यथार्थ के साथ अंकन किया है।

संग्रह की पहली कहानी का शीर्षक का कहानी संग्रह को नाम दिया गया है। 'कब तक' पहली ही कहानी है, जिसमें लेखिका ने कॉलेज के एक रिटायर्ड प्रोफेसर नीलेश चंदानी और उनकी धर्मपत्नी ममता को लेकर लिखी है। कथावस्तु में ममता की एक अंतिम इच्छा है कि डॉक्टरों पढ़ रहा उसका छोटा बेटा समीर बुढ़ापे में उसे छोड़कर न जाए, लेकिन कथावस्तु के अंतिम पड़ाव में ममता का एक्सीडेंट हो जाता है और हमेशा के लिए समीर को सिसकने के लिए प्रो. नीलेश चंदानी बच्चों की परवरिश के लिए उन्हें पढ़ाने के लिए जी तोड़ मेहनत करता है। फिर भी नौकरी के अंतिम दिनों में बढ़ती जिम्मेदारियों में वह पिस-सा गया था। बढ़ती महंगाई, कॉलेज की बढ़ती फीस को लेकर भी लेखिका ने प्रो. नीलेश चंदानी के माध्यम से आज के पिता की छटपटाहट को व्यक्त किया है। इसलिए चंदानी ट्यूशन शुरू कर लेता है, "ठीक है, रोटी-चटनी खा लेंगे, बच्चों की इच्छाएं अवश्य पूर्ण होनी चाहिए। अमल के लिए जीन्स, कमल के लिए टेपरिकॉर्डर।"

ममता की मृत्यु के बाद नीलेश घर की खिड़की की पास बैठ उस सड़क को देखता है। जिधर ममता गयी थी। पर कभी लौट नहीं पाती। विवश नीलेश इसके अलावा दूसरा अब कर भी नहीं सकता था। कहानी में आज के शैक्षणिक के वातावरण का भी वर्णन किया गया है-"वह प्रतिदिन कॉलेज में होने वाले परिवर्तन को देखता है। जहाँ पहले सीढ़ियाँ खाली रहती थी। वहाँ लड़के-लड़कियों के झुड़...धुएँ के उड़ते बादल...स्मृति मात्र से उसके अंदर लावा सा उबल पड़ता है।"² कहानी में आज इस वातावरण के कड़वे सच को भी उजागर किया गया है।

'धूमिल चित्र' संग्रह की दूसरी कहानी है। जिसमें लेखिका ने मालती के चरित्र के माध्यम से गाँव और महानगर की संस्कृति का चित्र खींचा है। दो वर्ष की उम्र से ही बंबई में रहने वाली मालती अपने बाबा के साथ अपने गाँव इलाहाबाद लौट जाती है और वही किसी का घर बसाने का सपना देखती है। मालती गाँव आकर अपनों की आत्मीयता पा जाती है। बंबई की चमक-दमक से उसे गाँव की गलियाँ अच्छी लगने लगती हैं। "गाँव की कच्ची, टेढ़े-मेढ़ी गलियाँ-बिना रोशनी

की कही अधिक स्पष्ट लगी-बंबई की जगमगाती सड़के.. सिनेमा, टैक्सी, लोकल, चौपाटी, जुहू सब धुंधले पड़ते चित्र से लगने लगे।"³ बंबई में अपनों की वह आत्मीयता कहाँ? गंगा के मीठे जल का प्रभाव कहाँ? वहाँ तो खारे समुद्र धिरे लोगों का खारापन ही उसे देखने को मिला था। मालती को बंबई से बढ़कर अपना गाँव ही अच्छा लगता है।

'फिर लौटूंगा' कहानी में लेखिका ने दुलारी के चरित्र के माध्यम से पारिवारिकता की चाह गोपाल के बाबा दुलारी के पति को हरपाल की दुलारी की भोली पीड़ा का अहसास कराती है। वही दुलारी को बच्चों के लिए जी तोड़ परिश्रम के लिए भी प्रेरित दिखाया है। कहानी का दूसरा मोड़ जिसमें दुलारी गाँव के जमींदार के हाथों अपनी इज्जत के लूटे जाने का राज बीस वर्ष तक अपने बच्चों से छिपाकर उनकी परवरिश किसी और शहर में करती रही। बीस साल के बाद बिछड़े पति के मिल जाने से दुख भरी जिंदगी में खुशी की लहर आ जाती है। पत्नीत्व को बनाए रखने की कामना और पति की पहचान न खोल पाने की विवशता उसकी पीड़ा को और भी गहरा देती है। कहानी के अंत में पति का जाते-जाते कहना 'फिर लौटूंगा' मर्मस्पर्शी लगता है।

गाँव की धिनौनी राजनीति का शिकार संग्रह की 'गाँव का शुभचिंतक' कहानी में बयान किया गया है। आदिवासी नर्स को सरपंच के अत्याचार एवं अपमान से राहत दिलाने के लिए लेखिका गाँव के अपने परिवार में पहुँचा ही नहीं देती बल्कि अपनी माँ के साथ चक्की पर अनाज पीसते माँ के गीत से विचवल वह यह तय कर लेती है कि, "सुबह त्यागपत्र भेजे देगी... जो उसने सीख लिया है। यही गाँव में रहकर करेगी.. गुज़ारा चल जायेगा....नौकरी नहीं करेगी। वह धीरे-धीरे उठी। काँपते हाथ से चक्की की मूठ थाम ली और माँ के स्वर मे स्वर मिला दिया।"⁴ नारी फिर भी कितनी असुरक्षित है। यह दिखाना शायद लेखिका का उद्देश्य इस कहानी में दिखाई देता है।

नारी शोषण की यह सदियों से चली आ रही आमानवीयता का वर्णन संग्रह की 'टूटा फूलदान' कहानी में मार्मिक शब्दों में अंकित हुआ है। स्त्री-पुरुष के यौन संबंध का भी वर्णन इसमें दिखाई देता है। कहानी में मालिनी घर वालों की इच्छा के विरुद्ध आधुनिकता मिजाज अपने ऊपर चढ़ा लेती है और जेम्स के साथ लंदन चली जाती है। तीन वर्ष तक जेम्स और मालिनी बिना विवाह किये, पति-पत्नी की तरह रहते हैं। अब मालिनी जेम्स पर विवाह के लिए दबाव डालती है, पर जेम्स है कि टालता जाता है। एक दिन जेम्स अपनी माँ के बुलावे पर भारत आता है और माँ ने कही लड़की से शादी कर लेता

है। तीन साल मालिनी के साथ रहने वाला जेम्स शादी की सूचना देना भी ज़रूरी नहीं समझता। जेम्स की शादी की सूचना उसका मित्र अहमद नासिर मालिनी को देता है। मालिनी शीघ्र ही नासिर से विवाह कर लेती है। नासिर से उसे दो बच्चे भी हो जाते हैं। फारूख और हसीना परंतु अहमद नासिर अत्यंत विलासी वृत्ति का इंसान था। उसे हर समय नित नूतन लड़की चाहिए होती थी और वह उसकी आवश्यकता अनुसार वैसा प्रबंध भी कर लेता था। इस प्रकार के व्यवहार को देख मालिनी आत्महत्या करने पहुँच जाती है। परंतु डॉ. सिंघानिया उसे बचा लेते हैं और उसे पुनः जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से विजातीय विवाह के बाद आने वाली विपरीतता, मानसिक दृष्टि का वर्णन किया है।

इसी दृष्टि से संग्रह में विजातीय विवाह का वर्णन 'संबंध अनाम' कहानी में भी आया है। स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भाग लेने वाली नायिका सुषमा आंदोलन से जुड़े खान साहब के व्यक्तित्व से प्रभावित होती हैं। अंग्रेजों की गोलियों से बचने के लिए दोनों छुपते फिर रहे थे, कि एक दिन सर्दी से बचने के प्रयास में एक-दूसरे के करीब आ जाते हैं। खान साहब की उम्र 45 वर्ष और सुषमा की उम्र 20 वर्ष थी, फिर भी सुषमा उनसे विवाह कर लेती है। भारत आज़ाद हो जाता है। अब खान साहब अपने अनुभवों पर फिल्म बनाना चाहते हैं। इसी बीच उनको शराब की लत लग जाती है। शराब के नशे में धुत खान साहब को कोई ने कोई घर लाकर छोड़ जाता है। अंत में उसे पक्षाघात हो जाता है। विजातीय विवाह के विषय को भी लेखिका ने अपनी पूरी सहानुभूति के साथ पेश किया है।

संग्रह की कहानी 'साब गाइड' फिर से अनाम संबंध होते हुए भी एक दूसरे से जुड़े रहकर एक-दूसरे के सहारे बनने की प्रेरणा देती है। कहानी का नायक अन्ना की जीजीविषा से जुड़ी करुण कहानी है। अन्ना की उम्र बारह-तेरह वर्ष की है। अन्ना अनाथ है। पढ़ाई के साथ गाइड का काम करता है। माँ के छोड़ जाने के बाद अन्ना अनाथ हो जाता है। तब मैसूर स्कूल के उत्तर भारतीय बूढ़े चपरसी ने उसे पाला-पोसा। बूढ़े चपरसी की भी कहानी कुछ-कुछ अन्ना जैसी ही थी। दोनों अनाथ बन गये थे बल्कि अनाथ बनाए गये थे। दोनों अपने-अपने परिवार से छले गए थे। इसीलिए पारिवारिकता का तत्त्व उन दोनों में संयोग से जुड़ पाया था। अन्ना पढ़ना चाहता और गाइड बनना चाहता था। "गाइड बनूंगा मेम साहब...इतिहास पढ़ूंगा...पूरे हिंदूस्तान का। सब पुराने किले, महलो, मंदिरों, गुफाओं के बारे में पढ़ूंगा। कॉलेज के लड़के

आये थे-कह रहे थे ये गाइड कुछ नहीं जानते...मेम साहब, क्या यह ठीक है?"⁵ अन्ना की जीजीविषा के देखकर लेखिका की अनाथों के प्रति रही पूर्ण सहानुभूति का परिचय पाठकों को होता है।

नारी विवशता का वर्णन संग्रह की कहानी 'दीवार में चिनी ईट' कहानी में स्वप्ना के चरित्र के माध्यम से दिखाई देता है। स्वप्ना की व्यथा भी पाठकों के भीतर करुणाजनक मानवी संवेदना जगाती है। उसकी पीड़ा दुतरफा है। एक तरफ से तो पिता द्वारा हक से वंचित किए गये भाई की सफलता की आकांक्षा का घात-प्रतिघात है। दूसरी ओर भौतिकवादी धनलोलुप बड़े भाई की बची हुई संपत्ति को हड़पने की साजिश के खिलाफ कुछ भी न पाने की उसकी लाचारी इन दोनों के बीच स्वप्ना निश्चेष्ट और जड़वत हो उठती है कि, उसकी नियति दीवार में चिनी ईट की हो जाती है। स्त्री को इस तरह के हर रिश्ते में पिसना ही पड़ता है। लेखिका ने यहाँ इसी को स्वर देने की कोशिश की है। साथ ही स्वार्थ प्रेरित संबंधों की औपचारिकता भी दिखाई देती है।

संग्रह की भाभो कहानी पंजाबी सभ्यता से जुड़ी कहानी है। कहानी में लेखिका ने आधुनिक युग में रिश्तों में जो अलगावपन है उसका यथार्थ शब्दों में अंकन किया है। भाभो ग्यारह की थी तब शादी हुई- "भाभो के चेहरे में किशोर होती बालिका की सहज लज्जा उभर आयी। खाना बनाना आता ही नहीं था। सास भी नहीं...ससुर ने खाना बनाना सिखाया था।"⁶ अल्लड़ अवस्था में ही भाभो का विवाह हुआ था। परंतु पति की मृत्यु के बाद सारे रिश्ते नाते होने पर भी भाभो अस्पताल में अकेली पड़ी रहती है। रिश्ते नातों की टूटन और जुड़न यह कहानी बताती है। वृद्धावस्था में व्यक्ति कितना अकेला हो जाता है इसका वर्णन इस कहानी का प्राण ही मानना होगा।

'लम्बी लड़ाई' कहानी के कथ्य से गुज़रते हुए, निस्संदेह यह लगता है कि, स्त्री के अधिकारों की लड़ाई लंबी है। यह सीधे-सीधे भविष्य को गढ़ने की लड़ाई से जुड़ी हुई है। कहानी की अनाम नायिका प्रिंसिपल दीदी इस सत्य को जानती है। इसलिए अविवाहित रहकर वह इस बात से संतुष्ट है कि, "इस पीढ़ी के लिए अपना जीवन समर्पित किया, प्रयत्न किया। प्रयत्न करना मनुष्य का कर्तव्य है। फल का मैंने कभी सोचा, न सोचूंगी।"⁷ मानो प्रिंसिपल दीदी ने गीता के अनासक्त कर्मयोग के सूत्र- 'कर्मण्येवाधिकारास्ते मां फलेषु कदाचन को आत्मसात कर लिया है।

संग्रह की 'निर्मुक्त' कहानी वर्तमान समाज में चल रही दो कुप्रथाओं का पर्दाफाश करती है। एक तो दहेज और दूसरा कन्या के जन्म देने पर औरतों को दिए जाने वाले उलाहने

तकलीफ का यथार्थ शब्दों में अंकन करती है। निर्मुक्त की नायिका नीहारिका का विवाह ऐसे परिवार के साथ होता है, जहाँ कन्या के जन्म लेने पर परिवार इतना खीजता है। यहाँ तरक्की शादी के लिए उन्होंने उन परिवारों से लड़की चुनी जाने का सोचा जिनके घर में लड़के जन्में हो। लड़की जन्मना अभिशाप है। बीच-बीच में लेखिका कह उठती है। नारी का भविष्य उज्ज्वल समझती है। औरत अपने आत्मबल पर अंधेरे में दीपक की लौ की तरह चमकेगी। क्या पुरुष का हाथ थामे बिना नारी जी नहीं सकती। यह कहानी नए नारी दर्शन से परिपूर्ण है। आधुनिक सोच है, बदली हुई परिपक्व सोच है। कहानी के अंत में निहारिका का कहना है कि, “मनुष्य को मुक्ति स्वयं खोजनी पड़ती है। अपना महत्त्व स्वयं जताना पड़ता है और अपना भविष्य स्वयं बनाना है।”⁸

‘बैसाखियाँ या मोतियाबिंद’ संग्रह की सर्वाधिक मार्मिक कहानी है। यथार्थ की विकट मजबूरियाँ, बच्चों की सीमित संकुचित हितों वाली आत्मकेंद्रित विद्रूप दृष्टि और माँ-बाप का टूटा हुआ स्वप्न संसार। जो बच्चे माँ-बाप की आँख के तारे बनते, वे ही मोतियाबिंद बन गए। स्वयं माँ-बाप की बैसाखियाँ बनने की बजाए रंजन और मोहन माँ-बाप को बैसाखियों की तरह काम में लेने लगे। बँटवारा संपत्ति का ही नहीं वरना माँ-बाप की भी करते हैं। क्योंकि कोई एक अकेला दोनों का भार नहीं उठा सकता। ब्रजभूषण इस बँटवारे को रोकता है और बच्चों से कहता है कि, “यह नहीं जायेगी... तुम लोग अपनी-अपनी गृहस्थी संभालो-हम कल ही किराये का घर देख लेंगे-अरे मेरी पेंशन इतनी तो है कि हम दोनों मजे से खा सकते हैं। क्यों बँटवारा करो हमारा-अरे बैसाखियाँ बनते तुम हमारे बुढ़ापे में बन गए मोतियाबिंद।”⁹ ब्रजभूषण की पत्नी के साथ अलग किराये के मकान में रहने का फैसला करता है। कहानी आज के युवा पीढ़ी के लिए माँ-बाप उनके अंत समय में कितने बोझ लगते हैं इस ओर भी इशारा करती है। समाज के ज्यादातर बुढ़े माँ-बाप आज इस समस्या के शिकार होते आज हम देख रहे हैं। कहानी में लेखिका ने अपने जीवन की सार्थकता सिर्फ पुत्रोत्पत्ति में मानते हैं। यह कहानी आज के आधुनिक जीवन में फट रही त्रासदी को अत्यंत विस्फोटक रूप में प्रस्तुत करती है।

‘तुम भी जाओगे’ संग्रह की नारी के दुख, दर्द पीड़ा को समेटी कहानी है। जिसमें लेखिका ने सत्ती के चरित्र के माध्यम से एक कर्तव्यनिष्ठ नारी के चरित्र को उजागर किया है। सत्ती सबसे मेल-जोल कर रहती थी। उसका पति विदेश में रहता है। वह हर तीन साल में उससे मिलने आता था और एक बच्चा देकर चला जाता था। मनीला में रहने वाला उसका

पति जब भी आता था, विदेशी वस्तुओं से घर भर जाता था। पारिवारिक जिम्मेदारी के बोझ तले दबी हुई सत्ती कहानी के अंत में जब उसकी मृत्यु होती है, तो वह बेवारस की तरह पायी जाती है। लेखिका ने सत्ती के चरित्र के माध्यम से एक कर्मठ महिला का चित्रण कर नारी की महानता को बढ़ाने का प्रयास किया है।

‘शव जो अरथी पर नहीं बंधे’ संग्रह की विशिष्ट कहानी है। माँ के शव के पास बैठे नायक शरद की फ्लैश बैक पद्धति से चित्रित पीड़ा के माध्यम से यह कहानी बंबई के एक कमरे की निम्नवर्गीय पारिवारिक जीवन स्थितियों के उस त्रासद सत्य को उद्घाटित करती है। जिसमें जवान होते बेटे-बेटियाँ पर्दे के उस पार माता-पिता के निजी रिश्ते से अछूते नहीं रह पाते। पर्दे के उस पार हलचल शरद को भी अनेक बार बेचैन कर चुकी है। चाहते हुए भी वह किरण के साथ शादी नहीं कर पाता। क्योंकि अपने भोगे हुए यथार्थ में अपने बच्चों को भागीदार नहीं बनाना चाहता। माँ तो सचमुच में मरी थी। पर उस छोटे से कमरे में रहने वाले परिवार के सदस्य मानो स्पंदनहीन हो गये थे- “ऐसी भीषण मौते अपने अंदर वह बार-बार महसूस करता रहा। किसी का स्पंदनहीन हो जाना मृत्यु है। केवल तन तक ही क्यों लोग सोचते हैं। उसका.. ..सभी तो मर चुके हैं। फर्क इतना है उनकी अरथी नहीं उठी। ..जुलूस नहीं निकला...कोई चीखा नहीं, किसी ने जाते शव को रोकने की खींचातानी नहीं की, उससे लिपटा नहीं... सबके कब्रे उसने अंदर ही बना डाली थी।”¹⁰ शरद ने जो भोगा था, वह दूसरों के साथ न हो। वह जानता है एक कमरे को पर्दे के सहारे दो कमरों में तबदील करने में उसके बच्चों के साथ भी वही होगा, जो उसके साथ हुआ है। लेखिका ने कहानी में महानगर में एक कमरे में परिवार के साथ रहने के कारण दाम्पत्य संबंधों में तनाव की प्रतीति, एकांत की आकांक्षा, जीने के क्रम में नित्य मरते रहने का एहसास बहुत सुंदर ढंग से अभिव्यक्त हुआ है।

संदर्भ-

1. कमलेश बख्शी, कब तक, ज्ञानभारती प्रकाशन, दिल्ली-1989, पृ. 5
2. वही, पृ. 5
3. धूमिल चित्र, पृ. 17
4. गाँव का शुभचिंतक, पृ. 36
5. साब गाइड, पृ. 64
6. भाभो, पृ. 86,87
7. लंबी लड़ाई, पृ. 99
8. निर्मुक्त, पृ. 109
9. बैसाखियाँ या मोतियाबिंद, पृ. 116
10. शव जो अरथी पर नहीं बंधे, पृ. 131

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, कैम्पनाभाऊ म. तु. पाटील कला महाविद्यालय, मारवड तह. अमलनेर जि. जलगाँव

बाल साहित्य की आवश्यकता क्यों?

डॉ. रीना सिंह

बाल्यावस्था में ऊर्जा, तेज, ओज, लय और गति समृद्ध होती है। यह अखण्ड चित्त-ब्रह्माण्ड है, जिसमें चर-अचर, जड़-चेतन, पदार्थ-अपदार्थ, प्रकाश-अंधकार सर्वस्व समाविष्ट है। यथार्थतः बाल्यावस्था प्रकारेण ब्रह्माण्डस्वरूप है। बालक के भविष्य की नींव है यह। इस वय में बालक की अवधारणा जो स्वरूप ग्रहण करती है, उसी के इर्द-गिर्द उसके भावी जीवन के क्रिया-कलाप गतिशील रहते हैं। बहुत कुछ तो बालक पर्यावरण के संघटकों से सीखता है, जैसे पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों के सामुदायिक, पारिवारिक संबंध व मानवीय गतिविधियाँ, जिनमें आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, औत्सविक और दुःखान्तकीय सक्रियताओं का समावेश होता है, पर अधिकांश वह साहित्यिक संरचनाओं से सीखता है। साहित्यिक संरचनाओं जैसे कविताएँ, कहानियाँ (ऐतिहासिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक और भावनात्मक पृष्ठभूमि पर लिखी गई) परी-कथाएँ, गीत (राष्ट्रगीत, धर्मगीत, लोकगीत) यात्रा-विवरण, महापुरुषों की जीवनियाँ, महापुरुषों की कृतियों के वृत्तांत, जीवन-संघर्ष कथाएँ, सामाजिक संघर्ष कथाएँ राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष आदि बालक के चरित्र का निर्माण करते हैं, उसकी जीवन-गतिविधियों को उत्प्रेरित करते हैं, उसकी आस्था, उसके विश्वास और उसके आचरण को आधार देते हैं। 'आज का बाल साहित्य बच्चों के लिए मात्र मनोरंजन करने वाला ही नहीं, अपितु उनकी रुचि, मनोवृत्ति एवं परिवेश से भी संबंधित होना चाहिए। आज का बालक केवल-कल्पित पौराणिक या परीकथाओं से सन्तोष नहीं कर पाता है, उसे सूरज-चन्द्रमा या पशु-पक्षियों पर आधारित कविताओं में आनंद नहीं आता है, उसकी चिन्तन और मनन-क्षमता पहले की अपेक्षा अधिक विकसित हो गयी है। आज का बालक बड़ों द्वारा दिए गए उपदेशों को ज्यों का त्यों आत्मसात् करने को सहमत नहीं है, वह उसमें उपयुक्ता एवं तथ्यपरकता का परीक्षण भी करता है। अतः आज ऐसे बाल-साहित्य की आवश्यकता है, जो बाल मानसिकता एवम् ग्राह्यता के अनुरूप बच्चों को ज्ञान-विज्ञान की आधुनिकतम

जीवनोपयोगी जानकारी दे सके।'¹

राम, कृष्ण, यीशू, पैगम्बर मुहम्मद, महावीर, बुद्ध, गुरुनानक, तुकाराम जैसी विभूतियों की कथाएँ बालक के मन पर आदर्श की एक गहरी छाप छोड़ती है। जहाँ लिंकन, महात्मा गांधी आदि के उदाहरण बालक को रचनात्मक जीवन और चरित्र अपनाने की प्रेरणा देते हैं, वहीं अशोक की कलिंग-विजय के नर-संहार और हिटलर के कृत्य उन्हें सावधान भी करते हैं, जहाँ सर आइजक-न्यूटन, मैडम मेरी क्यूरी, ऐडिसन, वेंकटरमन की खोजी वृत्ति की कहानियाँ उनमें उत्कंठा और जिज्ञासा के भाव पैदा करती हैं वहीं परमाणु-विस्फोट से जापान में हुए नर-संहार के प्रति उनके मन में एक जागरूकता पैदा करती है। हम ये नहीं कहते हैं कि जीवन-रचना मात्र पुस्तकों से ही हो सकती है, लेकिन इस तथ्य को नकारा भी नहीं जा सकता है कि साहित्य की पुस्तकें जीवन को सही दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं या 'साहित्य द्वारा बालकों को प्रभावित किया जा सकता है या इस प्रकार उनका मानसोपचार किया जा सकता है। यह एक प्रकार का ग्रंथोपचार (बिबलियोथिरेपी) है। बाल साहित्य अज्ञात रूप से बालकों का यही मानसोपचार करता है। बाल साहित्य के द्वारा बालक अपनी दुष्प्रवृत्तियों के रचेन (कथारसिस) में भी सफल होता है। जो हिंसापूर्ण और समाजघाती प्रवृत्तियाँ उसे कभी-कभी मार्गभ्रष्ट करने पर उतारू हो जाती है, वे बाल-साहित्य के तदनु रूप घटना चक्र से हृदय से निकल जाती है और बालक अपने को स्वस्थ-तनावहीन अनुभव करता है।'²

इसी प्रकार क्रीड़ा-साहित्य, यात्रा-वृत्तांत आदि विविध प्रकार की साहित्यिक कृतियाँ बालक के सर्वांगीण विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक बालक समाज का एक सृजनशील और कल्याणकारी सदस्य तभी बन सकता है, जब उसका समन्वित शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास होगा। बालक प्रकृति की अनमोल देने है, सुन्दरतम कृति है एवं सबसे निर्दोष वस्तु है, बालक के विकास पर दुनिया का

विकास निर्भर है। बालक की सेवा ही विश्व की सेवा है। इसी बाल सेवा के लिए श्रेष्ठ साहित्य उपस्थित कराना हमारा दायित्व है।¹⁹ साहित्य बाल-मन का अपरिहाय मानसिक आहार है जिस प्रकार बालक के शारीरिक विकास के लिए औषधि और पौष्टिक आहार वांछित है, ठीक उसी तरह उसके मानसिक विकास व मन-सक्रियता के लिए साहित्य अनिवार्य है। कहा गया है, “सा विद्या या विमक्तेय” अर्थात् विद्या सारे बंधनों से मुक्त करती है। भले ही बालक का शारीरिक विकास हो जाए, उसका बौद्धिक विकास हो जाए, पर यदि उसका आत्मिक विकास नहीं हुआ तो वह सर्वांग विकसित नहीं कहा जाएगा। साहित्य का स्थान बालक के जीवन में वही है, जो हमारे जीवन में प्रकाश का है। साहित्य मिट्टी के लोंदे को एक वांछित स्वरूप देता है। उसे सर्वप्रकारेण विमुक्त करता है। साहित्य ही है जो बालक को कुल, समाज, देश जाति, पर्यावरण, जगत, सूक्ष्म-जगत और शून्य का एक अभिन्न घटक बनाता है। बाल-साहित्य के अध्ययन से अनेक उद्देश्य एक साथ सिद्ध होते हैं। इस अध्ययन का

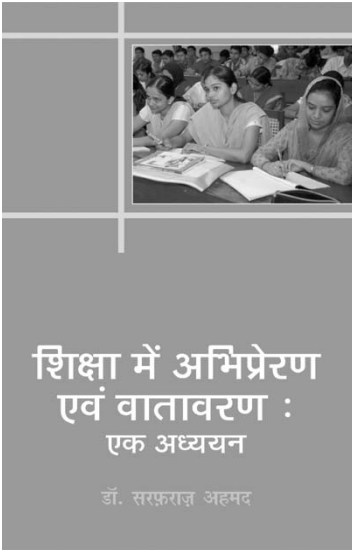
सामाजिक मूल्य भी है। आगे की समाज रचना बालकों के व्यक्तित्व पर निर्भर है, जिनका आधार बाल-साहित्य है।¹⁴ उपरोक्त अध्ययन से हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि बालक के निर्बाध सर्वांगीण विकास के लिए बाल साहित्य अत्यंत परम्वांछित गुण और द्रव्य है।

संदर्भ-

1. उत्तर प्रदेश-साहित्य और संस्कृति का मासिक: नवम्बर 1998 डॉ. रोहिताश्व अस्थाना का लेख: पृ. 17
2. हिन्दी बाल साहित्य की रूपरेखा : डॉ. श्री प्रसाद, पृ. 15
3. हिन्दी की श्रेष्ठ बाल कहानियां : संपादक डॉ. ऊषा यादव एवम् डॉ. राजकिशोर सिंह : प्रथम फ्लैप से।
4. हिन्दी बाल साहित्य की रूपरेखा : डॉ. श्रीप्रसाद, पृ. 16

वरिष्ठ प्रवक्ता हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू स्मारक पी.जी. कॉलेज, बाराबंकी (उ.प्र.)।

वाङ्मय बुक्स अलीगढ़



मनुष्य के विकास और उसकी शिक्षा के सन्दर्भ में वातावरण की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य का सम्बन्ध जिस प्रकार के वातावरण से होता है वह उसी के अनुरूप व्यवहार और अधिगम करता है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों के दार्शनिकों ने अपने-अपने सिद्धान्तों के निष्कर्ष के अनुरूप वातावरण की महत्ता दर्शायी है। आदर्शवादी सम्प्रदाय के दार्शनिक वातावरण को स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल और संस्कारी बनाने का प्रबल समर्थन करते हैं, जिससे मनुष्य में अच्छे आचरण और कुशल संस्कार का समावेश हो सके। यथार्थवादी सम्प्रदाय के दार्शनिक वातावरण को शिक्षा का प्रमुख अंग मानते हैं,.... दार्शनिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य शिक्षार्थियों को वातावरण के अनुरूप बनाने का समर्थन करते हैं, जबकि व्यवहारवादी सम्प्रदाय के दार्शनिक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने में वातावरण द्वारा प्राप्त ज्ञान को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। मूल्य 400/-

समकालीन कथा साहित्य में स्त्री-विमर्श

यशवंती

बीसवीं सदी को अस्मिता-विमर्श का युग कहा जाए, तो कोई अत्युक्ति न होगी। पश्चिमी देशों में जोर पकड़ता नस्लवाद-विरोधी आन्दोलन पूरे विश्व में भगिनीवाद का प्रचार करता नारी-मुक्ति आन्दोलन और भारत में सवर्णों की सत्ता को चुनौती देता दलित-आन्दोलन मिलकर अस्मिता-विमर्श की शुरुआत करते हैं जिसे उत्तर-आधुनिक दर्शन सुदृढ़ आधारभूमि प्रदान करता है। विमर्श आवेश को घिराकर संयत एवं संयमित कर लेने वाली परिवक्ताओं का दूसरा नाम है। विमर्श शब्द की उत्पत्ति 'मृशु' धातु में 'वि' उपसर्ग और 'घञ्' प्रत्यय लगने से हुई है जिसका अर्थ है-“वितर्क, विचारना, तथ्यानुसंधान, किसी तथ्य का अनुसंधान, विवेचना, आलोचना, युक्ति द्वारा परीक्षा करना, असंतोष, अधैर्ध्य, अधीरता।”¹ मानविकी पारिभाषिक कोश में इसका अर्थ है - “विमर्श संवाद का एक प्रकार है, जिसमें दो पात्र किसी समस्या पर प्रश्नोत्तर करते हुए वाद-विवाद करते हैं। इसके प्रयोग से जहाँ विषय में स्पष्टता आती है, वहाँ रचना-प्रवाह भी अखंडित रहती है।”² विमर्श किसी भी तथ्य, स्थिति, घटना आदि को तर्क के आधार पर जाँचने-परखने की प्रक्रिया है। डॉ. रोहिणी अग्रवाल ने विमर्श का अर्थ बताते हुए कहा है-विमर्श यानी वाद-विवाद-संवाद। यानी किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट-पुलट कर देखना, उसे समग्रता में समझने की कोशिश करना और फिर मानवीय सन्दर्भों में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना। अलबत्ता प्रयास यही रहे कि निष्कर्ष अन्तिम निर्णय की तरह थोपे न जाए, वरन् उन्हें 'ग्रो' करने के लिए भरपूर स्पेस और समय दिया जाता रहे। विमर्श को अंग्रेज़ी में Discourse कहते हैं जिसका अर्थ है - वर्ण्य विषय का सुदीर्घ एवं गम्भीर चिन्तन मनन करना। विमर्श में संवाद होता है। इसने व्यक्ति को अपने विचार रखने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। विमर्श में निर्णय थोपे नहीं जाते, बल्कि समय की मुठभेड़

में नया स्वरूप ग्रहण करने के लिए छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार किसी विषय पर कोई एक दृष्टि नहीं बल्कि अनेक दृष्टियों का संकलित नाम विमर्श है।

स्त्री-विमर्श को जानने से पहले 'स्त्री' शब्द की उत्पत्ति कहाँ से हुई यह जान लेना अति आवश्यक है 'स्त्री' शब्द 'रत्यै' धातु में ड्रप और डीप प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है - ठहरना, घेरा, बनाना, फैलाना अर्थात् जहाँ पर गर्भ ठहरता है उसे ही स्त्री कहते हैं। आधुनिक भाषा में स्त्री को Women कहा जाता है। इस प्रकार से स्त्री विमर्श का अर्थ है - स्त्री को केन्द्र में रखकर समाज, संस्कृति, परम्परा एवं इतिहास का पुननिरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की अनवत प्रक्रिया। स्त्री-विमर्श में स्त्री-चेतना के प्रसार का आख्यान है। विभिन्न धर्मों के अनुसार भी नारी से सम्बन्धी अवधारणायें बनाई गई हैं जो कि इस प्रकार हैं- 'ऐतरेय ब्राह्मण' ग्रन्थ "उसी नारी को उत्तम समझता है जो अपने पति को संतुष्ट करती है, पुत्र संतान को जन्म देती है और पति से बढ़-चढ़ कर कभी कुछ नहीं कहती।"³ 'बहिश्त की कुंजी' में स्त्री को कुछ नसीहते दी गई है कि "आपके पति आपको जैसा चलाना चाहे, आप उसी तरह चलिए और वे जैसा भी करें, आप उसी में संतुष्ट रहे। किसी भी काम में और किसी भी बात में उनके खिलाफ मत जाइए।"⁴

डॉ. रोहिणी अग्रवाल ने स्त्री-विमर्श का अर्थ बताते हुए कहा है "स्त्री-मुक्ति का आख्यान रचना नहीं है, अपने और दूसरों की नाक को बचाकर चलते सह-अस्तित्वपरक समाज की संरचना का मानवीय स्वप्न है। जाहिर है ऐसे समाज में लिंगगत भेद और मुक्ति के मुद्दे उठेंगे ही नहीं। वहाँ मुद्दे होंगे भविष्य की रक्षा और परिष्कार के जो पर्यावरण संवर्धन, आतंकवाद की समाप्ति, साम्प्रदायिक सद्भाव सरीखे सकारात्मक प्रयोजनों से लबरेज होंगे।"⁵ स्त्री-विमर्श पुरुष का विरोधी नहीं है बल्कि इसका विरोध उस पितृसत्तात्मक व्यवस्था से है

जो हर स्तर पर स्त्री को पुरुषों से हीन समझता है और उसके आगे बढ़ने के मार्ग को अवरुद्ध करता है। आज़ादी से पहले भी स्त्री-आन्दोलन चल रहा था और बाद में भी चला। पंडित रमाबाई ने 1890 के कांग्रेस-अधिवेशन में स्त्री-प्रतिनिधित्व का मुद्दा उठाया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में स्त्री-आन्दोलन समाप्त नहीं हुआ बल्कि दमन, उत्पीड़न और विषमता के खिलाफ आज भी कमर कस कर खड़ा है। स्त्रियों की राजनीतिक-सामाजिक आन्दोलन में भागीदारी को तीन स्तरों पर रेखांकित किया जा सकता है एक ओर तो जमीनी सच्चाईयों से जुड़े मुद्दों को लेकर आदिवासी किसान एवं काम करने वाली महिलाओं के आन्दोलन, दूसरी ओर पर्सनल लॉ को चुनौती देती अल्पसंख्यक वर्ग की स्त्रियों के आन्दोलन और तीसरी ओर राष्ट्रीयता के सवाल पर उठे आन्दोलन। पहले आंदोलन में तेभागा आंदोलन बलात्कार - घरेलू हिंसा-दहेज-कन्या भ्रूण हत्या, सती-प्रथा के खिलाफ आंदोलन आदि को लिया जाता है। दूसरे आन्दोलनों में महाराष्ट्र के 1968 तथा 1978 में हुए मुस्लिम-महिलाओं के आंदोलन प्रमुख हैं, जिनके माध्यम से मुस्लिम स्त्रियों ने हिन्दू स्त्रियों को दिए जाने वाले कानूनी अधिकारों की मांग करते हुए सौतबंदी और एकतरफा जुबानी तलाक पर पाबंदी लगाने की पैरवी की। तीसरे प्रकार के सवाल पर उठे आन्दोलन कश्मीर तथा उत्तर-पूर्वी प्रान्तों में सक्रिय है जहाँ स्त्रियाँ आतंकवादियों से अधिक भारतीय सेना और पुलिस द्वारा बलात्कार के आतंक से त्रस्त हैं। देश के रक्षक ही भक्षक बने हुए हैं। भारत में विशेषकर हिन्दी क्षेत्र में स्त्री-विमर्श पश्चिम से आयायित फेंशेनबल का पूर्वाग्रह कहा गया है। इतिहास साक्षी है कि 19वीं शताब्दी में नवजागरण के साथ ही स्त्री से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को उठाया गया यथा - दहेज प्रथा, बाल विवाह, भ्रूण हत्या, समानता का अधिकार, शिक्षा आदि। इन बुराईयों को दूर करने में गेविन्द रॉनाडे, ज्योतिबा फुले, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

हिन्दी साहित्य में स्त्री को केन्द्र में रखकर अनेक कथाकारों ने अपनी लेखनी चलाई है जैसे चित्रा मृद्गल, उषा प्रियवंदा, मनु भण्डारी, अनामिका, मैत्रेयी पुष्पा आदि। कथा साहित्य में हमारा साक्षात्कार ऐसी स्त्री-पात्रों से होता है जो अपने सामने उपस्थित चुनौतियों को दृढ़ता के साथ स्वीकार करती हैं और निर्णय के लिए किसी भी पुरुष का मुँह नहीं ताकती। मैत्रेयी पुष्पा की मंदाकिनी (इदन्नमम), सारंग (चाक), शीलो (झूलानट), अल्मा (अल्मा कबूतरी) मृदुला गर्ग की स्मिता (कठगुलाब), ममता कालिया की कविता (एक पत्नी के नोट्स) आदि में ऐसी स्त्रियाँ हैं जो अपनी अस्मिता, मुक्ति, अधिकारों की

प्राप्ति के लिए साहसपूर्ण कदम उठाने की पहल करती हैं। लवलीन द्वारा रचित 'स्वप्न ही रास्ता है' नामक उपन्यास में स्त्री की माँग सुरक्षा की अपेक्षा स्वतन्त्रता की है। इस उपन्यास की नायिका अपरा कहती है- "मैं स्थायित्व और सुरक्षा के बदले स्वतन्त्रता में विश्वास करती हूँ।"¹⁶ मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास 'चाक' में यह परिलक्षित होता है कि स्त्री कोई देवी नहीं है और न ही कोई सजाने की वस्तु। इस उपन्यास की पात्रों ने अपने व्यक्तित्व के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया है कि स्त्री को स्त्रीत्व से मुक्ति नहीं चाहिए, उसे उन रूढ़ियों से मुक्ति चाहिए जिन्होंने उसे वस्तु बना रखा है। 'चाक' उपन्यास में रेशमा सारंगा से कहती है - "बीबी, वे लोग कभी मुझे देवी बनाते हैं तो कभी राच्छसी। देवी तो पथर की होती है, मैंने कह दिया। उसका ठौर मन्दिर में होता है और राच्छसी लोगों का सत्यानाश करती है। मैं दोनों ही तरह की नहीं।"¹⁷ मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी कहानी 'बेतवा बहती रहे' में लिखा है-"विभिन्न मानसिकताओं के दुमुँहे समाज में आज की नारी मात्र वस्तु, मात्र सम्पत्ति, विनियम की चीज़ है।"¹⁸ नारी को मात्र भोग-विलास की वस्तु समझने वाली मानसिकता का विरोध भी मुखर रूप में किया गया है। रामदरश मिश्र की कहानी 'थकी हुई सुबह' की लक्ष्मी कहती है - क्या स्त्रियों को कोई दूसरा ईश्वर पैदा करता है या यहाँ स्त्री-पुरुष के लिए दो नियम हैं। वही पर जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'ध्रुवस्वामिनी' की नायिका अपने कायर पति को चुनौती देती हुई कहती है कि "यदि तुम मेरी, अपनी कुलमर्यादा की रक्षा नहीं कर सकते तो मुझे बेच भी नहीं सकते। मैं उपहार में दी जाने वाली शीतल मणि नहीं हूँ मुझमें रक्त की तरल लालिमा भी है।"¹⁹ परिवार में मुखिया का प्रभुत्व होने के कारण पुरुष एक प्रकार से निरकुश शासक होता है। इसीलिए परिवार अपने अन्दर ही दो भागों में बंट गया है। 'छिन्नमस्ता' की नायिका इस स्थिति को स्पष्ट करती हुई कहती है "हमारे घर में दो दल थे एक दलनकारियों का खेना, जिसके हाथ में सेफ की चाबी थी, जिसको जुकाम होते ही डॉ. गांगुली तो क्या सौ रुपये की फीस वाले डॉ. नलिनीरंजन दत्ता तक बुलाया जाता, जिसका घर की हर चीज पर पहला हक था। इस दल में माँ, बड़े भैया, बड़ी भाभी, उनका छोटा-सा चार-पांच साल का बेटा, सल्लो जीजी और मुझसे बड़ी मेरी बहन सरोज। दलित वर्ग के खेमें में गिनती थी मेरी और छोटे भैया की, जो किसी भी समझौते को मानने को तैयार नहीं होते।"¹⁰ आधुनिकता में प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र रहना चाहता है किसी का भी हस्तक्षेप नहीं चाहता। वह सम्बन्धों से मुक्ति नहीं बल्कि संबंधों में मुक्ति चाहता है। 'स्वप्न ही रास्ता है' नामक

उपन्यास में अपरा कहती है - 'यह मेरा घर है, जिसे किसी दूसरे की दरकार नहीं है। यहाँ स्वाधीनता है, कोई व्यवधान नहीं, अवज्ञा नहीं, विरोध नहीं, सहना और अवमानना नहीं। मेरी सत्ता को चुनौती देने वाला मेरे घर में कोई नहीं है, अकेले की गृहस्थी है।'¹¹ वर्तमान समय में भी बेटी होने पर दुःख मनाया जाता है लेकिन कई स्थानों पर बेटी होने पर खुशी मनायी जाती है। मृदुला गर्ग द्वारा रचित 'कठगुलाब' में दर्जिनी बीबी से कहती है "बीसियों बच्चे है मेरे, तभी इतने विश्वास के साथ कह सकती हूँ, एक बच्ची मेरा काम सम्भालेगी, एक मेरी चिंता को आग देगी बाकि सम्मानजनक जीवन जिएंगी। किसी एक की खातिर मुझे अकलपने की जरूरत नहीं है।'¹²

हमारे समाज में आज भी आदमी के काम को काम समझा जाता है जबकि औरत के काम को कुछ भी नहीं। औरत चाहे कितना भी कमा करे लाये, फिर भी दायम दर्जे का स्थान दिया जाता है। जब दोनों समान रूप से नौकरी करते है तो नारी को दूसरा स्थान क्यों? इसी प्रश्न को 'कठगुलाब' नामक उपन्यास में चित्रित किया गया है असीमा नर्मदा से कहती है "जब तक औरत यह समझती रहेगी कि मर्द ही असल कमाऊँ होता है उसकी कमाई को अनदेखा किया जाता रहेगा।'¹³ चित्रा मृद्गल द्वारा रचित 'आवां' नामक उपन्यास में नमिता को आत्मभिमान और आर्थिक रूप सजग नारी के रूप दिखाया गया है। नौकरी करते समय अन्ना के दुर्व्यवहार के कारण उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है और वह नौकरी की सख्त जरूरत होने के बावजूद भी उसे छोड़ देती है। जब आस-पास के लोग नमिता के ऊपर उसके ब्याह को लेकर ताने मारते है तो वह कह उठती है - "पांव पर खड़ी हूँ अपने। खड़ी रहने के लिए दृढ़ हूँ। मुनिया और छुन्नू को आत्मनिर्भर बनाना है ब्याह का क्या है, हो जाएगा। नहीं हो पाया तो मुझे नहीं लगता कि बिना ब्याह के मेरी सारी दुनिया उजड़ जाएगी।'¹⁴

स्त्री-विमर्श ने स्त्री समस्या को ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उठाया है। इसने समाज-रचना के वर्ग तथा वर्ग की विसंगतियों, नारियों के संत्रास, अमानवीय शोषण और सभी वर्गों में नारी पराधीनता का बड़ा मार्मिक चित्रण किया गया है। स्त्री-विमर्श बौद्धिकता का प्रतिफल भी नहीं, बल्कि यह सक्रिय आन्दोलन का विषय है। स्त्री के अस्तित्व की वास्तविक पहचान इसकी अनिवार्य शर्त है। स्त्री को शिक्षित और नए संस्कार में दीक्षित करने की आवश्यकता है तभी इसका अलग सोपान समतावादी सोच के धरातल पर मजबूती से खड़ा हो सकेगा।

संदर्भ-

1. सम्पादक नगेन्द्रनाथ बसु, हिन्दी विश्वकोश, भाग-21, पृ. 478
2. डॉ. नगेन्द्र, मानविकी पारिभाषिक कोश : साहित्य खण्ड, पृ 89
3. लालचन्द गुप्त मंगल, हिन्दी साहित्य : वैचारिक पृष्ठभूमि, पृ. 230
4. वही, पृ. 230
5. डॉ. रोहिणी अग्रवाल, इतिवृत्त की संचेतना और संरूप, पृ. 280
6. लवलीन, स्वप्न ही रास्ता है, पृ. 136
7. मैत्रेयी पुष्पा, चाक, पृ. 21
8. मैत्रेयी पुष्पा, बेतवा बहती रहे
9. जयशंकर प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी
10. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, पृ. 71
11. लवलीन, स्वप्न ही रास्ता है, पृ. 97
12. मृदुला गर्ग, कठगुलाब, पृ. 186
13. वही, पृ. 52
14. चित्रा मुद्गल, आवां, पृ. 442

शोध छात्रा हिन्दी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

निरूपमा सेवती के उपन्यासों में चित्रित नारी की समस्याएँ

प्रा. राहुल सुरेश भदाणे

वर्तमान युग नारी के उत्थान का युग है। इससे पूर्व जिस-जिस युग में नारी जीवन जी रही थी उस युग में वह युग उसके उत्थान का युग नहीं था। उसमें प्रतिरोध की भावना नहीं थी, वह जन्मना थी, वह अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक नहीं थी। आत्मसमर्पण, आत्मवंचना, आत्मदमन के संस्कारों से गढ़ी थी। उसकी लाचारी को नियति को सौभाग्य बताया जा रहा था। तद्दुयुगीन विद्यमान परिस्थिति को उसने अपना विद्यमान सत्य मान लिया था। औरत की स्थिति पिंजरे में बंद चिड़ियों की तरह होती जा रही थी, लेकिन बदलाव नियति का नियम है। नारी की इन स्थितियों में बदलाव आया अभी-अभी लगभग दो सौ साल पहले नारी के लिए एक नये युग का आरंभ हुआ। शिक्षा, ज्ञान, जिजीविषा के माध्यम से नारी में जागरूकता निर्माण हुई। इसकी अभिव्यक्ति हिंदी साहित्य में अनेक कथाकारों ने की। हिंदी उपन्यास लेखन जैसे तो 1857 ई. में आरंभ हुआ, लेकिन नारी विषय जन जागृति, उसके अस्तित्व की अभिव्यक्ति सन् 1950 ई. के बाद हुई। 1950 ई. के बाद ही महिला लेखिकाओं ने अपना लेखन प्रारंभ किया। स्त्री की बदलती तस्वीर तथा सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति इन महिला उपन्यासकारों अपने उपन्यासों में की हैं।

नारी की समस्याओं को लेकर अनेक उपन्यास आधुनिक युग में लिखे गये। निरूपमा सेवती ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी की अनेक समस्याओं की अभिव्यक्ति की है। उन्होंने पतझड़ की आवाजें, बँटता हुआ आदमी, मेरा नरक अपना है तथा दहकन के पार इन उपन्यासों की रचना की है। इन उपन्यासों के माध्यम से नारी के मन अभिव्यक्ति की है। उन्होंने अपने उपन्यासों के संबंध में कहा है कि “मेरी रचना यात्रा तो कहानी से शुरू हुई, लेकिन जब-जब यथार्थ चिंतन के बहुआयामी बिंबों ने आंदोलित किया तब-तब उपन्यास को रचने, जीने के लिए विवश होती रही। मनुष्य मन की कई-कई विचार-किरणें, मनुष्य जीवन के अनेक, अथाह रूप उपन्यास लेखन के साथ जीने को सहज ही उत्प्रेरित करते रहे। ऐसे तो

जब व्यक्ति स्वयं के परिवेश के बाद में ज्यादा सचेत होता है तो दूसरों के बारे में भी वह अपने में जागरूकता अनुभव करता है।”¹ निरूपमा सेवती के उपन्यास विराट बिम्बधर्मी कथावस्तु के विविध आयामों के उपन्यास हैं। इसमें एक ओर वह चरित्र उभरता है, जो समाज के यथार्थ को जीते हुए अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ता है, किंतु यह लड़ाई उसकी, ‘उसके अकेले की’ नहीं हैं, उसके पूरे वर्ग की लड़ाई है।

बांझपन की समस्या नारी जीवन की सबसे बड़ी समस्या है। हर स्त्री की शादी के बाद कामना होती है कि उसे संतान प्राप्ति हो। तभी उसका जीवन सार्थक हुआ ऐसा समाज में समझा जाता है। संतान प्राप्ति उसके जीवन का अविस्मणीय क्षण होता है। परंतु जब संतान प्राप्ति नहीं होती तो मातृत्वहीनता का बोझ नारी को तोड़ डालता है। वह संतान प्राप्ति के लिए अनेक प्रयास करती है। ‘पतझड़ की आवाज़े उपन्यास की मिसेज़ चंदानी के माध्यम से निरूपमा सेवती ने नारी के संतान विहीन जीवन की समस्या को चित्रित किया है। मिसेज़ चादनी को अनेक उपाय करने के उपरांत जब संतान प्राप्त नहीं होती तो उसके पास देवस्थान में मन्त माँगने के सिवाय कोई रास्ता नज़र नहीं आता है।

समकालीन जीवन की यह दुःखद स्थिति है कि दिन-प्रतिदिन दाम्पत्य-जीवन में अनेक समस्याएं निर्माण होती जा रही हैं। इन समस्याओं के कारण दाम्पत्य जीवन में दरार उत्पन्न होती जा रही है। पत्नी में पारस्परिक प्रेम, भावनाओं और विचारों की समानधर्मिता, पारस्परिक विश्वास आदि का अभाव इस स्थिति का कारण बन रहा है। पुरुष का अहं, स्त्री का अपने अस्तित्व और अस्मिता के प्रति सजग होना वह पति को साथी के रूप में पाना चाहती है। स्त्री भी गत युग में अपने अहं को पाल पोस रही है। पति पत्नी के बीच तीसरे की उपस्थिति के कारण भी विवाह-विच्छेदन की समस्या समाकालीन जीवन में उपस्थित हो रही है। निरूपमा सेवती ने पतझड़ की आवाज़े उपन्यास में सुनीला और सुधांशू कपूर इस दाम्पत्य के माध्यम से दाम्पत्य

जीवन के विघटन की समस्या को उजागर किया है। सुनीला आधुनिक नारी है। जो जीवन को अपनी तरह जीती है। जीवन में जो कुछ उसे प्रिय है वही उसे स्वीकारना। स्वतंत्र व्यक्तित्व की धनी होते हुए भी उसे अपने भैया-भाभी के सामने विवाह हेतु-झुकना पड़ता है जबकि वह विवाह को असुरक्षा मानती है। अपने भैया-भाभी के आग्रह पर वह सुधांशू कपूर नामक इंजीनियर से शादी करती है। सुधांशू कपूर एक ऐसा व्यक्ति है जो केपेबल कि एक वक्त में चार औरतें रखता है और सब को खुश भी रखता है। पैसा बनाने का नशा उसका सबसे बड़ा नशा है। वह आंतरिक तौर पर सुनीला से प्यार नहीं करता। अपने पति के बिहेवियर से उसे टिपीकल बू आने लगती है। वह अपने आपको 'कैप्ट वुमन' कहती है-“पुरुष अपनी मर्जी से ही हमेशा जिस्म पर हक जमाते हैं हर रात और कभी-कभी तो सुबह भी। हर रात का यह चक्कर इतना-इतना बुरा है कि मुझे लगने लगा था कि मैं....होती जा रही हूँ। एज़ इफ आई एम ए कैप्ट वुमन।तब इस शरीर से ही नफरत हो जाती है जरा बिस्तर का साथ देने से मना कर दो कभी ट्रीटमेंट यू मिलता है जैसे घर में पड़ी बेकार चीज़ रह गयी हो औरत तो। तब हर बात में झगड़ा किया जाता है। खर्चे के पैसे देने तक में भी कड़ापन...।”³ सुधांशू सुनीला को केवल एक उपभोग की वस्तु मानता है। वह अपने पति की जिम्मेदारियों को नहीं समझता है। स्वतंत्र व्यक्तित्व वाली सुनीला को किसी आदत का मोहताज होना पसंद नहीं चाहे वह पुरुष के साथ सोने की आदत ही क्यों न हो। उसे जीवन में अकेलापन पसंद है पर पाखंड नहीं। सुधांशू का अपने पत्नी के प्रति गलत और सुनीला का उस व्यवहार को सह न पाने की शक्ति के कारण उन दोनों में तलाक हो जाता है। कोई भी वैवाहिक जीवन तभी सुखी-समृद्ध हो सकता है जब पति-पत्नी का एक दूसरे के प्रति आदर भाव हो। वह एक दूसरे को ठीक तरह से जाने पहचाने समझे तभी वह सफल दाम्पत्य कहलाता है।

साठोत्तरी काल की बदलते परिवेश ने मानव जीवन में औद्योगिकरण, शहरीकरण, भावनिकता, बौद्धिकता जैसी उपलब्धियों का समावेश हुआ है। प्रस्थापित शहरीकरण, अर्थव्यस्था तथा वैज्ञानिक प्रगति ने मानव-मानव में स्थापित स्नेह, ममता, आत्मीयता, समझदारी, सहयोग तथा अनुकूलता को चुनौती दी है। परिणामस्वरूप आज मनुष्य अत्याधिक स्वार्थी, सौदेबाज चालाक, आत्मकेंद्रीय होता जा रहा है। जिसके कारण मोहभंग की स्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं। निरूपमा सेवती के 'पतझड़ की आवाज़' उपन्यास की अनुभा और सुनीला दोनों प्रमुख नारी पात्रों की मोहभंग की स्थिति को दर्शाया है। दोनों को अपने प्रेमियों द्वारा धोका मिला जिसके कारण उनमें ऐसी स्थिति

उत्पन्न हुई है। अनुभा अपने जीवन साथी के रूप में रमनेश को देखती है। उससे प्रेम करती है। उसे लगता है कि वह उसका जीवन की हर राह पर साथ देगा। किंतु रमनेश के परिवार वाले अनुभा के साथ रमनेश की सगाई इसलिए तोड़ देते हैं कि अनुभा अपने परिवार के साथ एक बदनाम बिल्डिंग में रहती है। जहाँ के ऊपर वाले माले पर नारी देह का व्यापार चलता है। यह बात सुनकर अनुभा को बहुत दुख होता है। वह रमनेश की मां से अपनी पवित्रता सिद्ध करने का प्रयास करती है। वह रमनेश की मां से कहती है कि नहीं, “खराब लड़की नहीं। वह मनेश को चाहकर भी भूल नहीं पाती है और न ही धन के अभाव के कारण दूसरी जगह घर नहीं ले पाती है।

आज अर्थ जीवन की धुरी बन गया है। इसके अभाव में मनुष्य जीवन को घोर निराशा से भर दिया है। अर्थ व्यक्ति तथा समाज के विकास का मेरूदण्ड बन गया है। भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति बढ़ते आकर्षण से अर्थ प्राप्ति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य बनता जा रहा है। हमारे सभी सामाजिक संबंधों और पारिवारिक रिश्तों पर अर्थतंत्र आज हावी हो गया है। विवाह की जो समस्याएं आज निर्माण हो रही हैं। उसका एक कारण.....भी है। निरूपमा सेवती ने भी पतझड़ की आवाज़' उपन्यास के माध्यम से अर्थ की इस समस्या को अनुभा और सुनीला इन दोनों नारी पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। सुनीला निहायत स्वार्थी, धन लोलुप विजय नामक आर्टिस्ट से प्रेम करती है और उसी से विवाह भी करना चाहती है। प्रेम के बहाव में वह विजय के बच्चे की मां बन जाती है। पर विजय उससे शादी नहीं करना चाहता है। वह उसे गोल्यां खाने के लिए या आर्बोर्शन करने के लिए कहता है। अपनी जिम्मेदारी से दूर भागता निकम्मा विजय सुनीला से कहता है-“क्या करूं, शादी नहीं कर सकता। हालात ऐसे हैं। अगर कोई बेहद अमीर लड़की होती तो संभव हो पाता। पिताजी का इतना आतंक है कि बहनों के लिए दहेज जुटा दूं तभी विवाह करने देंगे और सुन्नी, तुम्हारी तनखाह साढ़े चार सौ ही है तो है न। मान लो मैं अपना घर परिवार छोड़ तुम्हारे पास आ आऊं। तो क्या गुज़र हो सकेगी।..एक ही तरीका है हम बच जाएं। तुम्हारे भाई मेरे पिता को खुश करने को काफी रुपया दे सकते होंगे।”⁵ विजय के इस व्यवहार से सुनीला पूरी तरह टूट जाती है वह उसे समझाने की कोशिश करती है-“ओह विजय। मैं उस ढंग से तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकती। यह महसूस कर पहली बार मुझे अपनी तंगहाली पर कितना-कितना अफसोस हुआ.....सिर फोड़ने जैसा...”⁶अपनापन, रिश्ते आज कहीं खो गये हैं। मनुष्य आज जादा आत्मकेंद्रित बनता जा रहा है। वह आज खुद के विकास के लिए किसी की भावनाओं को

रौंदने को तैयार है।

‘बंटता हुआ आदमी’ उपन्यास की अनीता के माध्यम से निरूपमा सेवती ने प्रेमी से धोखा खाने के बाद निर्माण हुई अकेलेपन की समस्या को चित्रित किया है। अनिता एक बिना माँ-बाप की बेटी है जो अपने चाचा के यहाँ रहती है। जो अपने युवा अवस्था में किशोर नामक युवक से प्रेम को करती है किंतु स्वार्थी और बेहत चालाक किशोर अपने ऊपर हुए कर्ज को चुकाने के लिए अनिता का सहारा लेना चाहता है। वह अनिता को एक विधुर से शादी करने के लिए और बाद में उसे छोड़ देने के लिए कहता है ताकि इस बीच वह उधार लिये रुपये के सबूत वाला कागज़ फाड़ सके। अपनी आकांक्षा की पूर्ति के लिए किशोर अनिता से झूठा प्रेम करता है। किशोर के स्वार्थी प्रेम को पहचानने के बाद अनिता निहायत अकेली हो जाती है। वह अपने चाचा का घर छोड़ अकेला रहना पसंद करती है। एक ऑफिस में स्टेनो की नौकरी करने लगती है। वह अकेलेपन की कठोर दीवारों से टकराती हुई भी खामोश रहती है। रात...से जागती रहती है। किशोर के झूठे प्रेम के भ्रम से वह बाहर निकलने की कोशिश करती है। वह हमेशा दिन भर स्वयं व्यस्त रखना चाहती है ताकि किशोर से पाये भीतरी आघात से उभर सके। वह अकेलेपन की कठोर दीवारों से टकराती हुई भी खामोश रहती है। वह अपने मनःशांति के लिए हर शनिवार... जी के मंदिर में आती है। जब उसे पता चलता है कि किशोर ने एक अमीर डिवाँसी से शादी कर ली है तो वह इस संदमें से बहुत बीमार हो जाती है। वह अपनी तकलीफ किसी को नहीं बनाना चाहती है। वह रात को नींद आने के लिए डबल डोज़ लेती है। अपनी तकलीफ वह अपने मित्र शरद गुप्ता से बयां करती है-“जानते हो सब कुछ के बावजूद मुझे प्रतीक्षा थी कि कुछ वक्त गुज़र जाये फिर कोई चमत्कार हो जायेगा। वह एक पछतावे से भरे पुरुष की तरह मेरे पास लौट आयेगा और मैं उसे माफ कर दूंगी...पूरा एक हफ्ता बिस्तर पर पड़े हुए मैंने अकेलेपन का विराटतम स्वरूप पाया था और मैं जैसे सोच ही बैठी थी कि इसे पूरी तरह देखूंगी- एकदम पूरी तरह। देखूंगी अंत क्या होता है? क्या मैं शीशी की सारी गोलियाँ निगल पाऊंगी?...मैं देखूंगी मृत्यु का आगमन, उसका अलिंगन...” अकेलेपन की वह सच्चे प्रेम की समस्या आज बढ़ती जा रही है। मानव में मानवता का जैसे नामोनिशा मिटता हुआ दिखाई दे रहा है। ऐसी समस्याओं से नारी को दिन... गुज़रना पड़ रहा है।

विवाह संस्था की पवित्रता प्राचीन काल से भारतीय समाज स्वीकार की गयी थी। हिंदू समाज में विवाह के प्रति एक विशिष्ट धारणा है। विवाह पुनीत वह आत्मिक संबंध के रूप

में यह आशाएं टूटने लगी है। आज विवाह का आधार प्रेम या भावनात्मक संवेदना युग-युग के संबंध की आस्था या विश्वास नहीं है अपितु उसे मात्र एक सामाजिक समझौता, साथ रहने की आवश्यकता भर समझ गया है। साठोत्तरी महिला लेखिकाओं ने विवाह संस्था में परिवर्तित विचार धारा को अपने पात्रों के माध्यम से अच्छी तरीके से और बोल्डनेस के साथ चित्रित किया है। आज महिला कथाकारों द्वारा विवाह की सार्थकता पर प्रश्न उठाये गये हैं। विवाह को बंधन के रूप में स्वीकारने को आधुनिक स्त्री...तैयार नहीं है। विवाह और उसके साथ जुड़ी पवित्रता, प्रामाणिकता आदि की व्याख्याएँ बदल रही हैं। आज की नारी विवाह संस्था को नकारने लगी है। विवाह संस्था को एक भ्रष्ट संस्था मानने लगी है। जहाँ सिर्फ स्वार्थ दिखाई देता है। इसीलिए आज की विवाह-संस्था इस विकसित समाज के लिए बिल्कुल अनुपयोगी है। निरूपमा सेवती द्वारा लिखित उपन्यास ‘मेरा नरक अपना है’ की अनिता के माध्यम से सेवती जी ने विवाह-संस्था की पवित्रता पर प्रहार किया है। निरूपमा सेवती ने अनिता के माध्यम से समाज की अनेक दुर्बलताओं, विसंगतियों का पर्दाफाश किया है। विवाह संबंधी अनिता के विचार अत्याधिक आधुनिक हैं वह कहती है-“विवाह संस्था सबसे भ्रष्ट संस्था है। आज जो विवाह का रूप है। कितना सेल्फवाइफ बस खुद में ही लिपटे रहना चाहते हैं। सैक्स पर ही सारी कंसनट्रेशन हो गयी है।...विवाह तो सब से सुंदर व्यवस्था है इंसान को ऊँचे से ऊँचा पहुंचाने की पर अब इसका रूप विकृत होने से इस संस्था का कोई उपयोग नहीं.. .वी शुड जस्ट कट आऊट ऑफ अवर”⁸ बच्चों के माँ-बाप उन्हें स्कूल भेज खुश होते हैं, लेकिन यह नहीं सोचते कि इसका बच्चों के दिमाग पर क्या असर होता होगा। अनिता का यह मानना है कि जब तक संयुक्त प्रथा थी, विवाह आवश्यक थे किंतु इस एकल परिवार में यह जड़ता उत्पन्न करते हैं, मानवता का वध करते हैं, जिसका प्रभाव पूरे वातावरण पर, बच्चों पर भी पड़ता है और आने वाली पीढ़ी भी इसी घुटन का शिकार होने लगती है।

भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों के प्रति विशेष आदर रहा है। दया, त्याग, पवित्रता, सत्य आदि शाश्वत मूल्यों को नैतिक मूल्य कहा जा सकता है। भारतीय समाज-व्यवस्था में विवाह पूर्व यौन संबंध प्रायः मान्य होते, इस प्रकार के संबंधों को भारतीय समाज अनैतिकता की दृष्टि से देखता है। आज की आधुनिक नारी नौकरी करने हेतु, शिक्षा प्राप्त करने हेतु घर से बाहर निकलने लगी है। परिणामस्वरूप उसका अन्य पुरुषों से मेल जोल बढ़ने लगा है। एक दूसरे से मानसिक एवं शारीरिक तौर पर आकर्षित होने के कारण आज विवाह पूर्व ही स्त्री-पुरुषों

में यौन संबंध स्थापित होने लगे हैं। निरूपमा सेवती द्वारा लिखित 'मेरा नरक अपना है' की अनिला का विवाह पूर्व यौन संबंध रखने का एकमेव कारण है उसकी मां। वह बचपन में मां का सुमित के लव-अफेअर देखती है। जिससे प्रभावित हो वह भी खूब बढ़िया सा, बहुत गहरा-सा प्यार करने की मन में ठानती है और सुनिल के रूप में उसे वह संपूर्ण प्यार प्राप्त होता है। वह कहती है-"बचपन में मां का बढ़िया लव-अफेअर देखकर खुद भी जल्दी से जल्दी खूब बढ़िया सा, बहुत गहरा-सा, संपूर्ण-सा प्यार कर लेने की उमंग भरी पागल सी आकांक्षा भी दिल-दिमाग परचौदह साल की थी तभी से मासूम दोस्तियों में भी वह बड़ा तीखा-तेज़ प्यार ही ढूंढती रही और फिर जिसे यहां आकर सुनील में पाया। जिस्म-जान को एक-एक कण में प्यार के उन्मेषप्यार के सकून को महसूस किया।"⁹ जो प्यार मां विवाह के बाद अन्य पुरुष में ढूंढती है वही प्यार अनिला विवाह पूर्व ही सुनिल के साथ महसूस कर यौन संबंध स्थापित करती है। परिणामस्वरूप गर्भ.....घर के वातावरण का प्रभाव जाने अंजाने में अपने बच्चों के ऊपर पड़ता है। अगर वातावरण अनुचित रहा तो बच्चों पर भी अच्छे संस्कार करना बहुत कठिन होता है। इसीलिए परिवार का वातावरण अच्छा होना बहुत ज़रूरी होता है।

विवेच्य उपन्यासों में प्रतिबिंबित नारी जीवन के अध्ययन के उपरांत नारी जीवन विषयक विविध समस्याएँ सामने आते हैं। आज नारी का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं है। इसके अनेक कारण हैं जिनमें पति का व्यसनाधिन होना, उसका अहं तथा आर्थिक अभाव के कारण हो नारी का दांपत्य जीवन सुखी नहीं हो पाता। तलाक तक नौबत आ जाती है। जिसका परिणाम उन दोनों के बच्चों को भी भुगतना पड़ता है। विवाह होने के बाद पति अगर अच्छा हो लेकिन नारी की बांझपन की समस्या अगर है तो वह भी उसके लिए मुश्किले खड़ी करती है। इसके अभाव

में उसे अपना जीवन....उसकी पराधीनता की समस्या आज भी जैसी की वैसी है। नारी को नौकरी करते समय अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। उसे नौकरी करने की तो स्वतंत्रता मिली है किंतु वहां उसका शोषण किया जाता है। उसे निम्न दर्जा दिया जा रहा है। विवाह के लिए आज नारी अपना जीवन साथी खुद चुनने लगी है। किंतु अच्छा जीवन साथी पति के रूप में मिलना भाग्य की बात है। आज का प्रेमी नारी से इसलिए प्रेम करता है ताकि अपनी हवस समस्या बनती जा रही है। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव आज की नारी पर पड़ने के कारण आज की विवाहित, अविवाहित नारियाँ अनैतिक संबंध स्थापित करने लगी है। जिसके कारण उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। अतः इन सभी समस्याओं को देखने के बाद यह बात स्पष्ट है कि नारी को अनेक समस्याओं का सामना करते हुए अपना जीवन बिताना पड़ रहा है।

संदर्भ-

1. बंटता हुआ आदमी और अन्य उपन्यास-उपन्यास को जीते हैं, पृ. 5
2. बंटता हुआ आदमी और अन्य उपन्यास-पतझड़ की आवाज़ें, पृ. 101
3. वही, पृ. 103-104
4. वही, पृ. 9
5. वही, पृ. 70
6. वही, पृ. 71
7. बंटता हुआ आदमी और अन्य उपन्यास, बंटता हुआ आदमी, पृ. 222-223
8. बंटता हुआ आदमी और अन्य उपन्यास-मेरा नरक अपना है, पृ. 301
9. वही, पृ. 313

17. राजलक्ष्मी मुंदाणकरवाडी वाडी भोकर नाका, देवपुर धुले

गीत रचना के तत्त्व

आकाश वर्मा

प्रत्येक साहित्य की रचना अथवा काव्यकृति के मानदण्ड अवश्य होते हैं। गीत रचना के भी अपने मानदण्ड हैं। किसी रचना को हम गीत कहें अथवा उसके कौन-कौन से तत्त्व हैं इसी की चर्चा हम यहाँ करेंगे। गीत के विकास एवं उसके विस्तार इतिहास में ये सभी तत्त्व स्वतः ही निर्मित होते आए हैं। इन तत्त्वों के निर्धारण में तो कोई विवाद नहीं, लेकिन कहीं-कहीं मूल तत्त्वों के अतिरिक्त भी कुछ तत्त्व अवश्य गिना दिये जाते हैं। एक बात और है कि गीत की विशेषताएँ, गीत के लक्षण, गीत के स्वरूप आदि सभी नाम गीत के तत्त्वों का ही बोध कराते हैं। तो सबसे पहले हम गीत के विश्लेषण द्वारा दिये गये बिंदुओं को देखते हैं-

सच्चिदानंद तिवारी 'गीत रचना के तत्त्वों को गीत की विशेषताएँ' मानते हुए छः तत्त्व निर्धारित करते हैं- 1. संगीतात्मकता 2. अध्यांतरिकता तथा भावना की सार्वभौमिकता 3. भावान्विति 4. लघुता 5. उच्चकोटि की गंभीरता 6. स्वाभाविकता।

भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य के विद्वानों की परिभाषाओं और गीत काव्य संबंधी विचारों का अध्ययन एवं विश्लेषण करते हुए कांति लोधी गीत की निम्न विशेषताएँ बताती है²-

1. व्यक्तिनिष्ठ अंतर्दृष्टि (आत्माभिव्यंजना) 2. अंतर्निहित संगीतात्मकता 3. स्वतः स्फूर्त सरस भावाभिव्यक्ति 4. कल्पना, विचार और भावों की एकान्विति 5. रसोद्रेक क्षमता, सौंदर्यानुभूति की सक्षम अभिव्यक्ति 6. संक्षिप्तता 7. शाश्वत सत्यों के प्रति आसक्ति 8. पूर्वा पर निपेक्ष, चित्रात्मक रूप योजना।

गीत की विकास-यात्रा का विस्तृत एवं गहन अध्ययन कर उसके उत्स से आधुनिक युग तक की प्रत्येक एवं प्रतीतियों का अध्ययन करने वाले सुरेश गौतम काव्य के निर्णायक तत्त्वों को इस प्रकार मानते हैं³- 1. गीत सौरभ : स्वानुभूति अभिव्यंजना 2. आत्मिक भाषा : संगीतात्मकता 3. ब्रह्म स्वरूप : नाद अनहदनाद 4. सग की विद्युतधारा में भावानुभूति का संवाहक : छंद 5. स्वर सामरस्य की दृष्टि में अभिव्यक्ति की सूक्ष्म प्रक्रिया : छंद 6. मनः स्थिति, अनुभूति और भाव का संपूर्ण मानसिक

योग : प्रभान्विति 7. आत्मरस : संक्षिप्तता 8. अंतःप्रेरित अभिव्यंजना : अनुभूति की तीव्र आवेगमयी दीप्ति।

गणेश खरे संपूर्ण आधुनिक गीत साहित्य को प्रगीत कहते हैं, इस कारण वे प्रगीत के निम्न तत्त्व नियोजित करते हैं⁴-

1. सुख सुखात्मक आत्माभिव्यक्ति या आत्मचेतना की जागृति 2. व्यक्ति की पूर्ण अभिव्यंजना और आंतरिक प्रक्रिया 3. भावावेशमयी अवस्था विशेष और सहज अंतस्फुरण 4. भावना इकाई का महत्त्व 5. ध्वन्यात्मकता और स्वर साधना में गेयता 6. रूप और निरूप की अभिन्नता 7. निर्बंधता।

शुभनाथ सिंह गीतिकाव्य की विशेषताएँ (तत्त्व) कुछ इस प्रकार निर्धारित करते हैं⁵- 1. भाव तत्त्व और लय तत्त्व का सामंजस्य और समत्व 2. आत्माभिव्यक्ति 3. अनुभूतियों को सच्चाई और ताजगी 4. भावावेगों की तीव्रता, गहराई और अन्विति 5. प्रभावान्विति, सहजता और संक्षिप्ति।

गीत के तत्त्व तो प्रत्येक युग में यही रहे होंगे, परंतु मंजु गुप्ता 'आधुनिक गीतों के मूलतत्त्व' कहती है- 1. आत्माभिव्यंजना 2. स्वतः प्रेरित भावातिरेक 3. संगीतात्मकता 4. भावान्विति एवं प्रभावैक्य 5. संक्षिप्ता 6. निर्बंधता।

यहाँ हम देखते हैं कि गीत के तत्त्वों के विषय में सभी लगभग एक ही बात कहते हैं। शब्द-क्रम अलग-अलग, मगर भाव एक ही। पीछे दिये गये तत्त्वों को ध्यान से देखें तो अनेक तत्त्व एक-दूसरे के भीतर समाहित दिखायी देते हैं मतलब की कई तत्त्व केवल संख्या ही बढ़ाते हुए नज़र आ रहे हैं जैसे स्वानुभूति अभिव्यंजना और अंतःप्रेरित अभिव्यंजना में खास अंतर नहीं फिर भी सुरेश गौतम अलग-अलग गिनाते हैं। इस तत्त्वों के बीच से जो गीत के तत्त्व निकलकर आ रहे हैं वे इस प्रकार हैं जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे-1. आत्माभिव्यंजना 2. भावप्रवणता 3. सांगीतिकता 4. संक्षिप्तता 5. प्रभावान्विति 6. निर्बंधता

आत्माभिव्यंजना

आत्माभिव्यंजना के अंतर्गत ही व्यक्तिनिष्ठ अंतर्दृष्टि (क्रांति लोधी), स्वानुभूति तथा अंतःप्रेरित अभिव्यंजना (सुरेश गौतम), आत्मचेतना की जागृति, व्यक्ति के आंतरिक प्रक्रिया की पूर्ण अभिव्यंजना (गणेश खरे), आत्मिक अनुभूतियों की सच्चाई और ताजगी इत्यादि समाहित हो जाते हैं। गीत में 'मैं' की अभिव्यक्ति अधिक होती है। यह 'मैं' ही गीतकार की आत्माभिव्यंजना है। इस 'मैं' के माध्यम से गीतकार अपनी व्यक्तिगत और आत्मपरक अनुभूतियों को व्यक्त करता है। गीत की यह आत्मपरकता आवश्यक भी है क्योंकि अनुभूति, विचार, भाव के बिना आत्मपरक बनाये एक गीतकार उत्कृष्ट व्यंजना नहीं कर सकता। हालांकि गीतों में व्यक्त आत्मपरक अनुभूतियों का जुड़ाव अथवा वर्ग चरित्र वैयक्तिक न होकर सामाजिक भी होता है। इसी कारण "गीत केवल 'मैं' की अभिव्यक्ति नहीं 'मैं' के माध्यम से संपूर्ण सामाजिक जीवन की आलोचना है।" अर्थात् यह की संगीतकार सामाजिक अनुभव को भी वैयक्तिक अनुभव में ढालकर व्यक्त करता है और अपने वैयक्तिक अनुभव को पूरे समाज के अनुभव के रूप में प्रस्तुत करता है। गीत में उपस्थित 'मैं' को कुछ विद्वान वैयक्तिकता अथवा पूर्णतः निजी आत्माभिव्यक्ति मानते हैं। परंतु आत्माभिव्यंजना के भीतर सामाजिक अहं की भी अभिव्यक्ति रहती है। जब कवि परिवार, वर्ग, समाज या राष्ट्र के साथ अपने अहं का तादात्म्य कर लेता है, तब वह मैं से 'हम' बन जाता है। सामूहिक प्रार्थना या उपासना के गीतों में इसी सामाजिक-सामूहिक अहं की अभिव्यक्ति है। कहने का अर्थ यही है कि आत्म की अभिव्यक्ति (व्यक्ति विशेष की निजी आत्मानुभूति) के बावजूद भी वह सामाजिक अनुभूति का पर्याय रहता है, जैसे- रेलीया ना बैरी, जहजिया न बैरी/ पईसवा...बैरी हो.../हमरे पिया के भरमावै/पईसवा...बैरीहो...

इस लोकगीत में स्त्री का मात्र विरह ही नहीं व्यक्त हो रहा है बल्कि पारिवारिक जीवन और सामाजिक जीवन के संबंधों पर हावी हो रहे पूंजीवाद का भी चित्रण है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि यह दबाव एक व्यक्ति के अनुभव का हिस्सा मात्र न होकर पूरे सामाजिक जीवन का हिस्सा होता है, फिर भी गीतकार इस सामाजिक अनुभव को अपने नितांत व्यक्तिगत अनुभव के सांचे में ढालकर व्यक्त करता है।

देखा जाय तो गीत में आत्मपरक अनुभूति की अभिव्यक्ति (मात्रा) साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि अन्य विधाओं में कम है। दरअसल, प्रत्येक विधा कविता, गद्य कविता, गद्य का कोई स्वरूप, अथवा कोई कलात्मक अभिव्यक्ति हो सभी में मनुष्य

की आत्माभिव्यक्ति ही रहती है। समाज, प्रकृति, किसी विशेष परिस्थिति में घटने वाली घटना का प्रभाव ही ऐसी व्यंजना का स्रोत होता है, जो उसके अंतर्मन को गहराई तक छू जाता है। गीत में आने वाले 'आत्म' की अभिव्यंजना "मात्र रचनाकार की आत्माभिव्यक्ति नहीं अपितु उसके 'स्व' की तलाश का परिणाम है, जबकि वह अपने को समाज में और समाज का अपने में संदर्भित कर रहा होता है।" गीत में आने वाली आत्माभिव्यक्ति की बात अगर 'क्रिस्टोफर काडवले' के शब्दों में कहें तो वे मानते हैं कि "कलाकार (गीतकार) अवश्य यह समझता है कि कला (गीत) उसके आत्म की अभिव्यक्ति है जबकि वास्तविकता यह है कि कलाकार कला के माध्यम से अपने को अभिव्यक्ति नहीं करता, वरन् अपने आत्म की खोज करता है अपने अनुभवों को समाज के अनुभवों में संश्लेषित कर, अपने भीतर निहित आत्म को सामाजिक संबंधों के सांचे में स्थिर कर, वह न केवल एक नये सांचे-सामाजिक दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान वस्तु का ही निर्माण नहीं करता वरन् स्वतः अपने आत्म को ही एक नये सांचे में ढालकर एक नयी सृष्टि करता है।"⁹

अतः इससे कोई दो मत नहीं कि गीत की आत्माभिव्यक्ति, 'स्व' की ही अभिव्यक्ति होती है, परंतु इसमें 'पर' का स्वर सुनाई देता है। इस 'पर' की स्वानुभूतिक अभिव्यंजना ही गीत सौरभ है। यह 'स्व', 'पर' की सीमा लांघ जाता है जहाँ 'इस स्व के सम्मुख 'पर' संकीर्ण लगता है।"¹⁰ असल में गीत मानव के अंतर्मन के सुख-दुखात्मक अनुभूति का ही शाब्दिक प्रस्तुतीकरण है। यह बिना वैयक्तिकता के सहज रूप से अभिव्यक्त ही नहीं हो सकता। इस वैयक्तिकता का निर्माण यद्यपि की समाज से जुड़कर ही निर्मित होता है, लेकिन वहाँ बुद्धि तत्त्व (बौद्धिकता) का प्रभाव नहीं होता। अगर होता है; तो वह अंतर्मन के सहज एवं उच्छल भावावेग का या कहे कि 'आत्म' का श्रेष्ठ अभिव्यंजन नहीं है, वहाँ एक बनावटीपन (कृत्रिमता) झलकने लगती है। जहाँ गीत अपना प्रभाव खोने लगता है। अतः गीत के लिए 'आत्म' की वास्तविक अनुभूति आवश्यक है।

भाव प्रवणता

गीत में आत्माभिव्यंजना के साथ-साथ भाव प्रवणता का संबंध भी गीत के विषय वस्तु से होता है। 'गीत की विषय-वस्तु' का तात्पर्य "जीवन की अनुभूतियों की भावमयी एवं क्रिया व्यापारों से उत्पन्न मानसिक घात-प्रतिघात एवं तीखी अनुभूतियों की भावमयी अभिव्यक्ति"¹¹ है। दूसरे शब्दों में आत्म के अनुभूति की भावमयी प्रस्तुति ही गीत की भाव प्रवणता है।

गीत में 'भाव' तत्त्व भी प्रधान होता है क्योंकि गीत में भावात्मक संस्पर्श को ही लयात्मक वाणी दी जाती है। इससे वस्तु सत्य से भिन्न भाव सत्य अभिव्यक्त होता है। "यह भाव सत्य पूर्णतः आत्म से जुड़ा रहता है।"¹² मानव की भाव-शक्ति विचार के जन्म से प्रबल होती है जो स्वयं भी गीत में भाव रूप में ही आता है। यह भी कह सकते हैं कि विचार ही मंथन एवं चिंतन के साथ भाव में बदलने लगता है जो एक उन्माद का रूप लेता है। गीत में भाव प्रवणता तीव्र भावोन्माद में हुए बिना नहीं आ सकती। "सहज अंतःप्रेरणा' के तीव्र भावोन्माद में कवि इतना तल्लीन हो जाता है कि उस अवस्था में उसे लिखे बिना मुक्ति नहीं होती।"¹³ अन्न-जल की तरह ही लिखना उसकी आवश्यकता बन जाती है। गीतकार की सहज अंतःप्रेरणा जितनी तीव्र होगी भाव उतना ही गहन होगा, भाव प्रवणता उतनी ही व्यापक होगी। भावों की गहनता ही आत्मानुभूति के भावावेशमयी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति का कारक है। "इस अंतःप्रेरणा में इस प्रकार की अस्वाभाविक एवं अनियंत्रित गति होती है कि उसमें आने वाले विचार को शब्द पूरी तरह बाँध नहीं पाते। कवि को यथाक्रम लिखना कठिन हो जाता है, बीच में शब्द छूटते जाते हैं, कवि अपनी तन्मयता में आगे बढ़ता जाता है।"¹⁴ यह तन्मयता ही गीत को भावात्मक रूप से मजबूत बनाती है। बिना तन्मय हुए गीत को भाव प्रवण नहीं बनाया जा सकता। किसी भी काव्य अथवा गीत को बिना भाव प्रवणता के सशक्त एवं प्रभावशाली नहीं बनाया जा सकता। गीत की सार्थकता इसी में है कि उसमें तीव्र, गहन और सत्य युक्त भावाभिव्यक्ति हो।

संगीतिकता

संगीत के बिना गीत की और गीत के बिना संगीत की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती। संगीत ही गीत को गेयता प्रदान करता है। गीत में जहाँ सहज, सरल एवं कोमल भावनाओं का प्रवाह होता है वहीं संगीत का साथ, उसे और अधिक प्रभावोत्पादक एवं हृदयतंत्री को झकझोर देने वाला बना देता है।

चूँकि 'गेय होना गीत की अनिवार्य परिणति है।"¹⁵ इस कारण संगीत आवश्यक है। यह गेयता में संवर्द्धन करता है। गीत में हमें दो तरह का संगीत मिलता है। एक वह संगीत जो शास्त्रीय रागों पर आधारित होता है, दूसरा वह जो शब्द संगठन के आधार पर स्वतः निर्मित होता है। आज शास्त्रीय संगीत को आधार बनाकर गीत बहुत ही कम लिखे जा रहे हैं। शब्द संयोजन से उत्पन्न संगीत से ही आज गीत की रागात्मक वृत्तियों को स्फूर्ति दी जा रही है। इसीलिए आज गीत वाद्ययंत्रों का मुखपेक्षी नहीं रह गया। गीत की शास्त्रीय

संगीतबद्धता गीत की रागात्मक वृत्ति को बाँध भी देती है, जो सिर्फ शास्त्रीय संगीत का ज्ञान रखने वालों तक सीमित रह जाती है। शायद यही कारण है कि गीत में शब्दों की प्राकृतिक संगीतात्मकता ही आज प्रधान है। आवृत्ति प्रकृति और अभिव्यक्ति द्वारा की अंतर्स्थिति संगीत धारा अनायास ही फूट पड़ती है। इसीलिए संगीत, गीत की आत्मा में रचा बसा है। यह माना जा सकता है कि छंद, लय और संगीत ही वे तत्त्व हैं जो गीत और कविता को गद्य से अलग करते हैं। यह भी गलत नहीं हो सकता है अगर यह कहा जाय कि छंद और लय गीत की प्राकृतिक संगीतात्मकता को बनाये रखने में पूर्ण सहयोग करते हैं। गीत (और कविता) का अर्थ ध्वनि रूप में शब्दों की संरचना से उद्बुद्ध होता है। अर्थ रूप में शब्द की संरचना से तुलनात्मक दृष्टि से उस रूप में नहीं उद्बुद्ध होता और किसी सच्ची कविता में धर्म का विकास जो हम अनुभूत करते हैं, वह अंततः ध्वनियों की संरचना से निर्मित होता है। गीत रचना में ध्वनियों का सर्वाधिक महत्त्व होता है, उसका नाद सौंदर्य, भाव सकुलता और धर्म विस्तार बहुत दूर तक रचनाकारों की संगीत चेतना, छंद संयोजन और लय-संहति पर निर्भर है। स्पष्टतः गीत रचना में शब्द संगीत अर्थात् छंद संगीत और भाव संगीत अर्थात् अर्थ संगीत की अन्विति से ही संगीतात्मक प्रभाव का निर्धारण होता है। इस संगीत की स्वर माधुरी से मनुष्य क्या पशु-पक्षी भी आत्म विभोर हो उठते हैं। कभी-कभी भाषा से अपरिचित व्यक्ति काव्य के अर्थ के विस्तार, ध्वन्यार्थ और प्रीतीकार्य को समझने में असमर्थ रहने के बावजूद गीत की संगीतात्मकता, नाद-सौंदर्य और अनुगूँजात्मकता के प्रभाव क्षेत्र में अनायास ही आ जाता है। यह संगीतात्मकता का ही प्रभाव है कि "गीतिकाव्य (गीत) में रमणीय में अर्थ के साथ स्वर माधुर्य सामरस्य और लयात्मकता का योग दिखायी पड़ता है।"¹⁶ इस संयोग की निष्पत्ति के प्रभाव से ही मानव मन गीत के भाव की गहराई में डूब जाता है।

संगीत को गीत में पूर्णतः समाहित मानकर शंभुनाथ सिंह गीतिकाव्य की परिभाषा देते हैं कि, "गीतिकाव्य संगीतात्मक रूप में प्रयुक्त ऐसे शब्दों की योजना है जो तीव्र वैयक्तिक और संवेदनात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करते हैं।"¹⁷ दूसरे शब्दों में आत्मगत अनुभूतियों की संगीतात्मक अभिव्यक्ति ही गीतिकाव्य है, लेकिन यह अर्थ कदापि नहीं कि गीतकार का संगीतज्ञ होना ज़रूरी है। "गीत रचना के पूर्व गीतकार के मन में होने वाली 'अनुगूँज', जिसे रचनाकार प्रकृति और समाज के बीच से प्राप्त करता है। आत्मानुशासन से स्वतः संगीतबद्ध हो जाती है, यह रचनाकार का अपना कौशल होता है।"¹⁸ इस प्रकार संगीत के प्रश्रय से ही गीत में गेयता का प्रवेश होता है।

गीत की गेयता ही गीत का अनिवार्य धर्म है इस बात से सभी विद्वान सहमत हैं। गेयता के लिए 'लय' को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। "यह लय दो प्रकार की होती है-अर्थ की लय तथा शब्द की लय।"¹⁹ शब्द की लय का सीधा संबंध छंद से होता है जबकि अर्थ की लय गीत की अंतर्लय है। गीत की संगीतात्मकता के लिए 'लय' भी आवश्यक तत्त्व है। शब्दों का आपसी सामंजस्य अथवा अनुशासन शाब्दिक लय का निर्धारण करता है जो विचारों एवं भावों को गतिशील बनाते हैं। शब्दों के सटीक और गत्यात्मक प्रयोग, ध्वनियों के आरोह-अवरोह एवं संकोच तथा विस्तार, पाठ चेतना, बलाघात, स्वराघात, गति, तुक, अन्त्यानुपास, विराम, पुनरुक्ति आदि के सम्यक्, प्रयोग से ही गीत में लय संहति निर्धारित होती है। गीत का छांदसिक होना भी गीत की संगीतात्मकता के अनुकूल होता है। इससे उसको आकार की प्राप्ति होती है। यह "छांदसिक आकार गण-मात्रा, स्वराघात, अन्त्यानुपास, तुकसंयोजन, पुनरुक्ति आदि के द्वारा बनता है तथा गीत की संगीतात्मकता ताल, सुर, लय, मात्रा, ग्राम और विभिन्न राग-रागिनियों द्वारा।"²⁰ बिना संगीतात्मकता के गीत प्रभावपूर्ण नहीं रह पाता, चाहे यह संगीत शास्त्रीय हो अथवा आत्मानुशासन से उत्पन्न। यह काव्य के सभी रूपों के लिए आवश्यक माना जाता है।

संक्षिप्ता

गीत के निर्माण में हमारी आंतरिक प्रेरणा प्रमुख स्रोत का कार्य करती है। इसका जीवन अत्यंत क्षणिक होता है। उस क्षणिक अंतःप्रेरणा की बहुत बड़ी विशेषता होती है कि इसकी समाप्ति के पश्चात् कोई भी चीज़ इसका स्थान नहीं ले सकती। यह क्षणिक अंतःप्रेरणा ही गीत के आधार-निर्धारण में मुख्य भूमिका निभाती है। यह अंतःप्रेरणा बड़े आकार में नहीं व्यक्त हो सकती उसके लिए छोटा एवं संक्षिप्त रूप ही श्रेष्ठ होता है। इसके क्षणिक होने का कारण यह है कि, "मानव का यह स्वाभाविक गुण है कि, उसकी चेतना एक भाव में अधिक देर तक नहीं रह सकती।"²¹ वास्तव में, मनुष्य का मन इतना चंचल और तीव्रगामी होता है कि प्रत्येक क्षण उसकी भाव चेतना बदलती रहती है। संवेदनशील रचनाकार; इसी परिवर्तित हो रहे भावों में किसी एक से गहराई तक प्रभावित हो जाता है, जहाँ गीत की रचना प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। एक क्षणिक अनुभूति की अभिव्यक्ति बहुत विस्तृत हो सकती है, लेकिन विस्तृत अभिव्यक्ति पुनः किसी पाठक, श्रोता को वह क्षणिक अनुभूति नहीं दे सकती। वह विस्तृत आकार उस क्षणिक अंतःप्रेरणा को बोझिल बना देगा। इस कारण गीत का आकार बड़ा नहीं हो सकता। गीत का संक्षिप्त

होना ही उसकी प्रभावान्विति में सहायक होता है। इस कारण संक्षिप्तता भी गीत रचना के लिए महत्वपूर्ण है।

प्रायः गीत में एक ही विचार (भाव) या अनुभूति की अभिव्यक्ति रहती है। इस अनुभूति अथवा विचार खण्ड को सघन रूप से समग्रता में व्यक्त करने के लिए संक्षिप्त आकार की ही आवश्यकता पड़ती है जो अत्यधिक प्रभावकारी सिद्ध होता है। वृहद् रूपाकार अनुभूति की सघनता को विखण्डित कर देता है। गीत के संक्षिप्त एवं लघु होने का कारण यह भी है कि 'गीत की अंतिम परिणति गाया जाना ही होता है। एक गीत को सामान्य अवस्था में, एक बार में अधिक से अधिक पाँच मिनट तक गाया जाना ही संभव होता है। शास्त्रीय संगीतबद्ध गीत हो अथवा शाब्दिक लय बद्ध गीत, उतने ही समय तक प्रभावित रख सकता है, अधिक देर तक नहीं। क्योंकि "संगीत के अंक में बँधा हुआ तथ्य उतने ही काल तक मन पर प्रभाव डाले रह सकता है, जितने समय तक श्रोता संगीतमय रह सके और तथ्य उचट न जाये। गीत में एक तथ्य के साथ एक निवेदन, एक ही रस, एक ही परिपाटी होती है। उसका प्रयोग भी एक ही प्रकार का होता है। अतएव वह मन को केवल कुछ समय के लिए ही अपनाए रह सकता है।"²² अतएव लघु आकार ही गीत के उपयुक्त हैं।

ऋग्वेद की ऋचाओं से लेकर वर्तमान काल के गीत काव्य तक में हमें आकारगत संक्षिप्ता का दर्शन मिल जाता है। गीत का बड़ा आकार अनुभूति की सघनता को कम कर, उसके अनुगूँजात्मक प्रभाव को निष्क्रिय-सा कर देता है। गीत, कभी-कभी आंदोलनों एवं संघर्षों की चेतना को गतिशील एवं ओजस्वित करने का भी कार्य करते हैं। यह मनुष्य के सुख-दुख, जय-पराजय, आशा-आकांक्षा आदि संवेगों को भी व्यक्त करते हैं। दीर्घ संरचना इसके समग्र भाव बोध को हल्का कर प्रयोजन मूलकता को पूरी तरह बाधित कर देता। इसीलिए श्रेष्ठ गीत का रूपाकार संक्षिप्त ही होता है। लंबे गीत प्रबंधात्मक प्रवृत्ति के हो जाते हैं जिससे गीत की अनुभूति शिथिल हो जाती है, हालांकि मेघदूत (कालिदास), गीत-गोविंदम् (जयदेव), बाईस्कोप का गीत (नचिकेता) जैसे कुछ ही गीत प्रदीर्घ रचना के रूप में, गीत लंबे इतिहास में दिखायी पड़ते हैं। सामान्य अवस्था में एक ही अनुभूति को उसकी संपूर्ण जटिलता के साथ समग्रता में व्यक्त करने वाले गीत संक्षिप्त ही होते हैं। अतः संक्षिप्ता गीत के लिए आवश्यक तत्त्व है।

प्रभावान्विति

गीत में प्रभावान्विति का सीधा-सीधा अर्थ गीत में प्रभाव डालने वाले तत्त्व की स्थापना से है। वह तत्त्व या शक्ति जो

गीत को प्रभावी प्रभावपूर्ण बनाये, से तात्पर्य यह है कि “प्रभाव की एकरूपता²³ को बनाये रखे, उसमें निरंतरता को स्थापित कर सके। इस ‘एकरूपता की निरंतरता का संबंध इस बात से है कि गीत का प्रभाव तत्त्व हमेशा बना रहे। यहाँ व्याकरणिक अनुबंध समाप्त प्राय हो जाते हैं, जो सिर्फ भाव से जुड़कर उसके प्रभाव को बढ़ाते हैं। यह बहुत हद तक लय तत्त्व या लय संहति पर भी निर्भर करता है। ‘गीत का यह तत्त्व, उसके विषयवस्तु की प्रकृति को भी निर्देशित करता है। प्रभावान्विति इसलिए भी आवश्यक है, कि गीत “पाठक के समूचे अस्तित्व को पूरी तरह से एक बारगी झकझोर सके और यह तभी संभव है जब रचनाकार की अनुभूति मानवीय दुखों, संघर्षों और यातनाओं की कोख से जन्मी हो।”²⁴ रचनाकार की गहनतम भावुकता एवं अनुभूति या सूक्ष्म संवेदनशीलता, गीत की सम्प्रेषणीयता को अक्षुण्ण बनाये रख सकने में सक्षम है। जब तक रचनाकार की मनःस्थिति भाव सागर में डूबती-उतरती नहीं तब तक वह अपनी अनुभूति को प्रभावशाली नहीं बना पायेगा। जो कि प्रभावान्विति के लिए आवश्यक है।

निर्बंधता

निर्बंधता का अर्थ होता है- ‘मुक्त होना’। गीत में निर्बंधता का अर्थ ‘गीत’ का बंधन मुक्त होना है। किसी कविता के मुक्त होने का मतलब होता है, शैल्पिक स्तर पर, भावगत स्तर पर नहीं। भाव तो स्वतः मुक्त रहता है चाहे वह किसी भी रूप में रहे। दरअसल, निर्बंधता या कहें कि गीत की निर्बंधता इस बात की द्योतक है परंपरागत छंद से मुक्ति, क्योंकि नवीन भावबोधों को नवीन स्वरूप मिलना प्रारंभ हो गया था। परंपरागत सवैया, धनाक्षरी पद शैली से मुक्त होना गीत की निर्बंधता है। आधुनिक युग में गीत ने अपने लिए एक नवीन ‘छंदमुक्त-छंद’ का निर्माण किया, जिसमें प्रत्येक गीत का अपना अलग छंद निर्मित हो जाता है। अवधेश नारायण मिश्र भी इस ‘छंदमुक्त छंद’ को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि “गीत की निर्बंधता का तात्पर्य उसके छंद मुक्त होने से नहीं है। छंद तो गीत के निर्बंध होने में सहायक है।”²⁵ भाषा, लय, शिल्प, भाव किसी भी स्तर पर गीत में कोई बंधन रहता। इसका मतलब यह कि गीत

अनियंत्रित एवं अनिश्चित गुणों को धारक भी नहीं। बल्कि होता यह है कि गीत की लय, भाषा, देश और काल की सीमाओं में नहीं अटती। इसमें इतनी क्षमता होती है कि भाषा की समझ के बिना भी किसी देश या काल का व्यक्ति बिना इसके प्रभाव में आये नहीं रह सकता। गीत की निर्बंधता गीत की छंद मुक्ति के लिए नहीं, भाव के नवीन छंद निर्धारण से है।

संदर्भ-

1. आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य, पृ. 23-24
2. कांति लोधी, साठोत्तर हिंदी गीतिकाव्य, परंपरा और प्रयोग, पृ. 10
3. सुरेश गौतम, सूर्यम-पश्या गीत यात्रा, भाग 1, पृ. 73
4. गणेश खरे, आधुनिक प्रगीतकाव्य युग, पृ. 21
5. शंभुनाथ सिंह, छायावाद युग, पृ. 184
6. मंजु गुप्ता, आधुनिक गीतिकाव्य का शिल्पविधान, पृ. 11
7. हिंदी नवगीत का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 70
8. वही, पृ. 70-71
9. शिवकुमार मिश्र, मार्क्सवादी साहित्य चिंतन : इतिहास और सिद्धांत, पृ. 278
10. सुरेश गौतम, सूर्यम-पश्या गीत यात्रा, भाग-1, पृ. 77
11. हिंदी नवगीत का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 73
12. हिंदी साहित्य कोश, भाग-1 (सं.) धीरेंद्र वर्मा, पृ. 458
13. आधुनिक गीतिकाव्य का शिल्पविधान, पृ. 14
14. गणेश खरे, आधुनिक प्रगीत काव्य, पृ. 28
15. नचिकेता, गीत रचना की नयी जमीन, पृ. 32
16. आधुनिक गीतिकाव्य का शिल्पविधान, पृ. 17
17. शंभुनाथ सिंह, छायावाद युग, पृ. 184
18. हिंदी नवगीत का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 73
19. वही, पृ. 71
20. वही, पृ. 72
21. शंभुनाथ सिंह, छायावाद युग, पृ. 192
22. सुरेश गौतम, सूर्यम-पश्या गीत यात्रा भाग-1, पृ. 88
23. हिंदी नवगीत का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 73
24. वही
25. हिंदी नवगीत का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 73

असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी विभाग, असम विश्वविद्यालय,
सिलचर, असम, 788011

